१०-५४

करें। वह तो गनीमत है ..... ।"

मैं ही मेरी पत्नी खिलखिला कर हंस पडी और मेरे मुंह पर हाथ रख दिया "ना...ना...नाऽ सारा भेद लये, पहले कुछ खा लीजिये, वरना ये धक्के देकर बाहर देंगे।" मेरे दिल में एक ठसक सी लगी, कहीं यह कल का बदला तो नहीं ले रही, फिर भी मैं अपने पन पर हंस कर आगे बढ़ गया। हाथ का सामान रख ुस्लखाने से हाथ मुंह धोकर तौलिये से बदन पौंछता हुआ ला तो एक तीर सा हृदय में गड गया...मेरी पत्नी मेरे से सटकर बैठी थी और मुझे देखते ही 'एक दम उठ गई. पर बैठकर हमने चाय ली, बातचीत की, हंसते भी रहे, पर चीत में मेरा पापी मन गोपाल की निगाहों पर जासूसी रहा। पत्नी मानों मेरी जलन को भाँप कर ही हंस पड़ती मन की खटास कड़वाहट बन कर हृदय को जलाने लगी गोपाल ने चलने के लिये कहा और मैं उसे बैठ जाने के कहने की औपचारिकता भी निबाह न सका, न सही ढंग अभिवादन ही हो सका। शंका का विषैला नाग मित्रता का माधुर्य निगल कर मन ही मन फुफकार रहा था। मैं बैठी के सांस्कृतिक शिष्टाचार का निर्वाह करने में भी अशक्त आ रहा। शायद वह भी कुछ ताड़ गया था; मेरी पत्नी द्वार तक पहुंचाने गई मुझे फुसफुसाहट भरे कुछ शब्द सुनाई पड़े था। कह रहा था "मैं ऐसे अवसर पर आया और ठहर न पड़ा, मैं सुबह ही चला जाऊंगा, कॉल आ गई, थोड़ा वेह भी घातक होगा। ओ. के. फिर मिलेंगे, तब तक तुम बुद्धु को भी सीधा कर लोगी।" और कहते कहते मेरी का दृश्के गालों को अपनी दो उंगलियों के बीच दबाकर मुस्करा

मैं गि। मैंने देखा पत्नी बजाय लज्जित होने के बेशर्मी से हंस

दी। "मुझे गलत ना समझना, किसी अच्छे समय परिचय हो जायेगा। आज नाटक ही सही ......।"

मैं गुस्से से आग बबूला हो गया। मेरे मन में क्रोध की अगन लग गई। ईर्ष्या का तूफान बफर उठा। मैंने पत्नी के लौटते ही चिल्लाकर पूछा, "कौन सा नाटक रचाया था तुमने...?" वह मधुर अट्टहास कर उठी, आग में घी पड़ गया, शंका विकराल हो उठी—"तुम जानती हो उसे, वह कौन था?" विष भरी मुस्कान मुझे दीख पड़ी, उसने कहा, "तुम्हारा प्यारा मित्र, और मेरा भी प्यारा ....।"

इससे पहले कि वाक्य पूरा करती मेरे हाथ का भरपूर थप्पड़ उसके मुंह पर पड़ा—"नीच, कलंकिनी, पतिता......" अनेक गालियों के साथ कई प्रहार किये। शायद क्रोध ने मुझे पागल बना दिया था, यह भी भूल गया कि उसके गर्भ में मेरा अंश पल रहा है, होने वाला बच्चा। ईर्ष्या ने जला डाला था मुझे, घर का सब सामान उलट पुलट दिया। उसने रोने-रोते कहा था - "वाहरे पुरुष के धैर्य......?" मैं हृदय में शंका शूल छिपाये कंधे पर चादर डाल बाहर निकल गया। कि ही दिन इधर-उधर विपश्चित की भाँति घूमता रहा शान्त न सका। और पश्चाताप की पवित्र अग्नि में तपकर जब घर लौटा तो उसे न पाया। अभावों और सामाजिक लाँछनाओं की शिकार मेरी पत्नी प्रतीक्षा के कपाट तोड़कर कहीं निकल गई थी। प चला मेरे यहा बेटे ने जन्म लिया था। जिसके विचित्र काल्पनिक चित्र लिये मैं आज तक घूम रहा हूं—बनजारा सा। ...।

× × × ×

मैं कुछ बेचैनी सी महसूस कर रहा था, स्त्री लौट आयी थी, उसने मुझे सिर से उठाकर दूध का गिलास मुंह से लगा दिया। हुये कहा, "लीजिये दूध पी लीजिये।" दूध का घूंट

उतारते हुये मैंने उसका परिचय चाहा, "तुम कौन हो ?"
"केवल एक स्त्री। जिसे पहिचानने में तुम सदैव असमर्थ रहे।" स्त्री बोली, आवाज परिचित सी लगी, लगा जैसे जीवन की चाह साकार हो उठी हो, "कौन हो तुम ?" मैं पट्टी हटाने का उपक्रम करने लगा। उसने कहा, "पट्टी मत खोलना, इसी में मेरा और तुम्हारा दोनों का हित है।" अबकि फिर एक सिसकी सुनाई पड़ी। मेरा मन डोलने लगा, मैंने पट्टी पर हाथ फिराया, अनुभव किया, पट्टी फर्जी है। आँखों पर चोट या दुखन नहीं थी मैंने उसे एकाएक खोल डाला, देखा सामने मेरी पत्नी खड़ी थी, आग में तपे हुए कंचन के समान। एक साथ भावनाओं का तूफान उमड़ पड़ा, मन ने चाहा, दौड़कर बाँहों में भर लूं और आंखों से बहते सारे आंसुओं को होठों से पी जाऊं किन्तु बदन पर लगी हुई चोटों की पीड़ा की कल्पना ने उठने नहीं दिया। चुम्बकीय प्रभाव से खिचकर दो हृदय एक हो जाना चाहते थे पर शंका कुचालक बनकर आज भी बीच में खड़ी थी।

मैंने पूछा —"तुम ?"

उसने कहा—"क्या पुरुष में है अपनाने की शक्ति ?

"सम्भवतः नहीं ?" कह कर चल दी—अग्नि की चिता पर बैठी जनक नन्दिनी ···पास में खड़े थे शंकालु पुरुष राम···और आसपास थे मौन अनुयायी समाज के अन्य व्यक्तित्व-लक्ष्मण, हनुमान और सुग्रीव आदि एक प्रकाश चक्र सीता को घेर रहा था। मैं उसमें फंसता जा रहा था जैसे निकलने के लिये चिल्ला पड़ा हूं—"रुक जाओ ··ऽ ऽ ऽ।" उठने के प्रयास में गिरकर बेहोश हो गया।

कह नहीं सकता कि मैं कोई स्वप्न देख रहा था या जाग्रत का दृश्य। इतना मैं अवश्य अनुभव करता हूं जब मूर्छित होकर

मैं गिर पड़ा, मेरी आंखें बन्द हो गई थीं, मेरी चेतना खिसकने

सी लगी थी पर उसी समय आकर मुझे किसी ने अपने हाथों में थाम लिया और धीरे-धीरे बड़े परिश्रम से चारपाई पर लिटा दिया, मैंने ठण्डी सांसों को अपने मुंह के पास अनुभव किया और अनुभव किया दो तपती हुई जल की बूंदों को, जिन्हें दो पतली उंगलियों ने तत्काल ही मेरे मुंह से पोंछ दिया।

मेरी समझ में नहीं आता भगवान क्यों बार-बार मेरी रक्षा करते हैं। पहाड़ी से कूद गया था तो वृक्ष में उलझ गया और पट्टी खोलकर देखने पर जब आंसुओं से भरा चेहरा लिये पत्नी जब मुंह फेर कर चलदी तो उसे पकड़ने की चेष्टा मे मैं उठने लगा तो चक्कर खा गया। चक्कर खाकर यदि मे गिरता तो मेरे पास ही अंगारों से दहकती चमकती अंगीठी थी जिन हाथों ने मुझे आश्रय दिया वे हाथ मेरी पत्नी के ही थे। मैंन उस समय भी उठती गिरती कल्पनामयी तरंगों में इसकी अनुभूति की थी। यद्यपि उस समय मैं भाव सरिता में डूब उतरा रहा था तो भी मुझे लगा जैसे कि माया अपनी गोद मे किसी जीव को उठाकर बहलाने की चेष्टा कर रही हो, निर्मोही प्राण शरीर का पींजरा छोड़कर मुक्त गगन में उड जाना चाहते हों। पर वह प्यार का दाना देकर उसे बांधे रखना ही चाहती हो। पलकें गिरती चली गयीं मैं नींद की खुमारी में आ गया।

× × × ×

किसी कोमल मधुर कण्ठ ने आकर जगाया।

'अजनबी कौन हो तुम ?"

अधखुली पलकों को ऊपर उठाते हुये नींद के नशे में मैंने देखा—एक अनिंद्य सौन्दर्य, कांचन-प्रतिमा के समान, कोमल वल्लरीतुल्य अथवा विकासमान नव चम्पक कलिका सदृश्य, गौरांगना, तन्वङ्गी रुपसी जीवन में आशा और प्राण का संचरण करने वाली मलय सुरभि सी भावनाओं की खान

साकार मूर्ति सी रमणीया उमड़ते-घुमड़ते नील नभ के श्यामल चंचल मेघ खण्डों के समान तरल तरंगायित सी केश-राशि; पीयूषवर्षी सुधाकर की चारु चन्द्रिका से निर्मित मुख; सुपुष्ट प्रेम पयोधरों से मुक्त शरीर क्षीण कटि भाग, पुष्ट नितम्ब और कमलों की लालिमा को तिरस्कृत करने वाले चरण। मुख की ओर जाकर मेरी दृष्टि अटक गयी। ओठ क्या थे दो कमल की पत्तियां जैसे बिना प्रयास ही पास आ गई हों और नासिका—लम्बी झुकी हुई—कमल दलों पर चिकीर्षु शुक की भांति। नेत्र क्या थे मानों ओठों का रस चूसने को तत्पर वास्तविक स्वत्वाधिकारी, उड़ने के प्रयास में असफल दो चंचल तन कृष्ण भ्रमर। मैं विनिमेष देखता रहा, देखता ही रह गया। न कोई श्रृंगार न कोई प्रसाधन, न वस्त्र न आभूषण, न तिलक न अंगराग, थी तो बस एक वस्तु—रक्त की झलकती हुयी लाली, उमड़ते हुये स्वास्थ्य का पारावार, शरीर पर सफेद बालों वाली भेड़ की खाल, लगता था जिससे व्यर्थ ही शरीर की शोभा को बांधने का असफल षड़यंत्र किया गया हो। मुक्त सौन्दर्य उभर-उभर कर सुन्दर अंगों का सहारा ले बाहर झांक रहा था। मैं देखता ही रहा, कुछ उत्तर न बन पड़ा, जैसे ज़बान पर ताला पड़ा हो। "मैं कौन हूं" मन ही मन विचार करने लगा, 'यह कौन है' बार-बार सोचने लगा। नवीनता विस्मय का आगार बन कर मेरे सामने खड़ी थी।

एकाएक इन्द्रजाल तोड़ कर जैसे किसी मधुमयी ने मधुर संगीत की स्वरमयी पायलें छनका दी हो, स्वर सुनाई पड़ा—

"रे, अजनवी कौन हो तुम ?"

लगा जैसे वह सब कुछ जानती हो, केवल रूप के जाल में बांधकर कोई खेल खेलना चाहती हो। मैंने कहा—

"एक यायावर जीव"

इसके नेत्र चंचल हो उठे वह खिलखिला पड़ी। प्रबोधित करते हुये बोली—

"अजनबी तू साधारण नहीं है रे, तूने अपने को नहीं देखा" मैं किंकर्त्तव्य विमूढ उन्मन्त सा उसको देखे जा रहा था. कुछ सजग हुआ तो अपने शरीर की ओर देखा और देखा आसपास का वातावरण। यह कोई पहाड़ी स्थान छोटे वड़े पत्थर दूर तक बिखरे पड़े थे। चारों ओर वन-वृक्षों से लदी पहाड़ियां जैसे प्रकृति ने ही कहीं-कहीं से फटी हरी भरी चुनरिया ओढली हो। एक पत्थर की चट्टान पर मैं लेटा था, मुझे अपना शरीर मांसल, पुष्ट व्रज सा कठोर दिखलाई पड़ा। आश्चर्य था मेरे शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था सर्वथा नग्न ही था वस बांये कंधे पर होता हुआ, आधी छाती और गुप्तांगों को ढकने वाला किसी हरिण का चमड़ा। किन्तु मेरी अनुभूतियां वैसी ही थी, क्यों? शायद मनुष्य के शाश्वत संस्कार सभ्यता के पर्दे में ढके हुये भी अतीत से लेकर आज तक ऐसे ही चले आ रहे हैं इसलिये।

उसने मेरे कन्धे पकड कर झकझोरा और कहा, "हैं रे, क्या देख रहा है रे, जागेगा नहीं, "समझेगा नहीं" चंचल नेत्रों को और अधिक चपल बनाते हुये इस प्रकार वह खिलखिलाई कि मुझे खुद से ही शर्म आने लगी। मैंने स्वयं को तिरस्कृत सा अनुभव किया, एक बार अपने शरीर पर दृष्टि डाली—सुन्दर, सुपुष्ट देह—खून में गर्मी आ गई, पुरुष का गर्व जाग उठा। न जाने मस्तिष्क पर किसका प्रभाव हुआ, एक दम उठ खड़ा हुआ, निर्लज्ज जंगली की तरह झपट कर उस स्त्री को नीचे से पकड़ कर बांहों में उठा वक्ष-स्थल से चिपटा लिया—

"मैं···मैं आदमी तू···तू···औरत। मैं···मैं···पुरुष ···तू···माया मैं प्रिय तू प्रेयसि।"

वनचरों की भांति उसे गोद में उठाये उसके अंगों से अपनी

नासिक ने आया——बहुत देर कीं छीना झपटी के बाद एकाएक
उसे । लवंगी ने अपने दाँये हाथ की दो पतली-पतली उंगलिय
पुरुष की नाक के दोनों नथनों मे डाल दी और ऊपर खींचने लगी ।
इसी प्र हाथ से सिर के वाल कसकर पकड़े हुये, पैरों से उसकी
आकांक्ष दबोच कर इतना निढाल बना दिया कि उसने घुटने टेक
और अपना सिर धरती से टकरा जाने के डर से उसने अपने
पर प हाथों को फैलाकर धरती पर टिका दिये । ऐसा लगा जैसे
के त भयकर हिंसक जन्तु पर कोई शक्ति चढ़ बैठी हो, मैं मन
एक मन नतमस्तक हो प्रणाम करने लगा ।
के पृ फूत्कार सा करती लवंगी ने कहा, "चल, चल नहीं तो फाड़
मु गी ।" उस व्यक्ति के हिंसक भाव छिपकर भय के भाव प्रकट
ने लगे थे । वह चौपाये कीं भाँति कुटिया की ओर सरकने
गा । मेरे निकट आ जाने पर उसी तरह उस पर चढ़े हुये
से उसने कहा..."सितकेत, जल्दी......जल्दी कर, ले आ
ला पत्थर, मार दे इसे ।"

मुझे उस विकराल की दयनीय अवस्था पर भी दया आ रही
कुछ क्षण यूंही खड़ा रहा, एकाएक सोच नहीं पाया क्या
लवगी ने कहा——"देर ना कर, मार, मार इसे, नहीं तो,
एक हम सवको ।"
कुटि लवंगी तमतमा कर लाल हो रही थी, दाँत कटकटा रहे थे,
पसन्द करा‌ल व्यवित की नाक में पड़ी हुयी उंगलियाँ और ऊपर
के पौ रने लगी । वह भैंसे की भाँति डकरा उठा । उसकी आँखों
को स नी झरने लगा । मैंने कहा——
दौड़ती लवंगी छोड़ दे इसे, मर जायेगा ...।"
मुझसे गी ने दाँत पीसते हुये कहा——"मरेगा कहाँ, हमको मार
से मेरा और फिर नाक की उंगलियों को ऊपर खींचने लगी,
व्यवित ने अपने हाथ खोल कर उठा दिये ।

कैसा होता है यह जीवन का मोह प्राणी में ? पुरुष ने नारी के सामने पराजय स्वीकार की वह उसके संकेत को समझ गई ।

"तेरे लिये छोड़ती हूं सितकेत । आज तक तेरे जैसा आदमी मुझे नहीं मिला, और कोई होता तो इसे जरुर मार देता, पर तू औरों से अलग, और कुछ ही है ।" हाँफती हुयी वह नीचे उतर आयी । विकराल पुरुष अर्द्ध मूर्छित सा होकर एक ओर को लुढक गया था वह गर्व से तनी हुयी दोनों हाथ कुल्हे पर रखकर हाँफ रही थी और मेरी ओर देख रही थी मैं आन्तरिक भावना के विषय में सोच रहा था—क्यों मैंने उसे नहीं मारा ? सम्भवत: जिस परमात्मा ने हम सबका निर्माण किया है उसी ने हमारे छोटे से हृदय में अनेकानेक अलौकिक भावों की सर्जना भी की है जिनमें बर्बरता से लेकर दिव्य दैवीय गुणों तक का समावेश है। जिस पर वह कृपा करता है उसमें दया, दाक्षिण्य आदि दिव्य भावों की सृष्टि करता है । लवंगी मेरे समक्ष आयी । उसके कथन का सही अर्थ मैं समझ न सका । मैं नवागन्तुक के विषय में विस्मृत और शंकित ही रहा और उसके अभद्र व्यवहार पर मुझमें क्रोध और ईर्ष्या का जन्म हुआ, उसके विकराल शक्ति शाली दृढ़ शरीर को देखकर भय और कम्पन तथा विवशता अनुभव करते हुये मैंने महान शक्ति का स्मरण किया, लवंगी के रूप में वह शक्ति देखकर मेरा मन श्रद्धा और आनन्द से भर गया पर दृढ़ शक्ति का आर्त्तनाद मेरे आनन्द में बाधक हुआ । आनन्दित होकर मैं सब जगह आनन्द ही देखना चाहता था, आनन्द में व्याघात पड़ने पर उसके उड़ जाने का भय मुझमें समाने लगा, मैंने लवंगी से विकराल को छोड़ देने की प्रार्थना की, यदि उसने प्रतिरोध किया होता तो सम्भवत: मैं लवंगी की सहायता भी करता पर

उसे निढाल देखकर मैं उसकी बेबसी के प्रति करुणा से भर गया। लवंगी को खींचते समय जिगीषा की जिस भावना का जन्म मुझमें हुआ था वह स्वतः ही शान्त हो गई। लवंगी में भी यही जीतने की भावना प्रबल होकर शांत हुयी होगी . छोड़ देने के बाद लवंगी में जो गर्व मैंने देखा वह मुझे दर्द सा देने लगा। और एक क्षण के लिते मेरे मन में प्रतिस्पर्द्धा की भावना जागी, यह मेरे द्वारा पराजित क्यों नहीं हुआ ? क्या मैं कदर्य हूं, अब लवंगी मुझसे घृणा न करने लगे क्योंकि उसने मुझसे उसे पत्थर मारने को कहा था। फिर भी लवंगी के नेत्रों में उमड़ता घुमड़ता प्यार देखकर जिस आनन्द का भाव मैंने अनुभव किया वह अवर्णनीय है। मुझे एक नई शक्ति का आभास हुआ जिसके सामने दैवी कृपा से विजेता होकर भी लवंगी प्रमत्त न हो पायी थी वह शक्ति थी—क्षमा। मैंने अनुभव किया कि विकराल पुरुष की विवशता का लाभ उठाकर यदि मैं उसे पत्थर से मार देता तो यही मेरी कायरता होती पर अब क्षमा के गर्व और आनन्द से भर रहा था। मैं अलौकिक विचारों के सागर में गोता लगाने लगा। लवंगी ने दोनों बाँहें मेरे गले में डालकर जब प्यार से झटका दिया तो सारे विचार फुर हो गये हम दोनों खिलखिला पड़े।

विकराल पुरुष को कुछ-कुछ होश आने लगा था क्योंकि वह कराहट के साथ करवट बदल रहा था। मैंने लवंगी की ठोड़ी को उंगली से ऊपर उठाते हुये पूछा, "लवंगी कौन है वह ?" लवंगी ने उत्तर दिया, "दिडांग, हमारे कबीले का मुझे··· मुझे चाहता है, पर · मैं···मैं तेरी हूं ···· तेरी बस तेरी ····· सिहकेत · किसी और की नहीं, इसने मेरे लिये कितनों को ही मार दिया···तुझे भी मारता···मैं इसे मार देती पर तूने बचा

लिया…मैं ठीक ही कहती हूं तू औरों में अलग है बड़ा है।"

लवंगी मेरे तन मन को छोड़ मेरी आत्मा पर अधिकार कर चुकी थी, वह मेरे लिये केवल सौन्दर्य नहीं शक्ति का आधार बन गयी थी। यद्यपि मैं उसकी सहायता करने में असमर्थ रहा था तो भी उसने मुझपर किसी प्रकार का आरोप न करके केवल प्रेम ही प्रेम बरसाया था। मुझे वह करुणामयी, दयामयी क्षमाशीला और गुणज्ञा दिखलाई पड़ी।

आज का समाज अपने को अधिक सभ्य समझता है, अधिक शिक्षित तो हो गया किन्तु विकास के किस स्तर पर उसके पग हैं, किसी से छुपा नहीं। छल दम्भ, द्वेष, स्वार्थ और केवल वासना के लिए जीवन की कितनी विभूतियाँ बलि दी जाती हैं मिथ्या करण के पीछे भ्रष्टाचरण की नग्न क्रीड़ाएं किस प्रकार छुपायी जाती हैं! पशुबल का अर्थबल के दबाव से समाज के मत्त गज-यूथों द्वारा कितनी अर्द्ध विकसित कोमल कलिकाओं सी सुकुमार कामनाएं मसल दी जाती हैं, किसी से कैसे छिप सकेगा? कभी-कभी तो यूं लगता है जैसे समाज विकास चक्र की अन्तिम सीमा पर आदिकाल और अन्तिम काल के सन्धि क्षेत्र में प्रवेश कर रहा हो। कभी नग्नता पर आवरण और कभी आवरण से नग्नता की ओर। संसार में बसन्त आया है मानव जाति का विकास काल — मधु काल, नवीन रूप लेकर नये रंग सजाकर। मधुकाल के इस विकास में मधुकर और मधुकरियों द्वारा परस्पर की प्रतिस्पर्द्धा वश इतना मधुपान कर लिया गया है कि उन्हें न अपनी सुध रही न पीने की और न ही पिलाने वाले की। मैं सोचता हूं कि सभ्य जगत की अर्द्ध नग्नता किस रूप में समानता करेगी उस आदिकालीन लवंगी से।

कहीं से हल्की-हल्की जंगली लोगों की आवाज का हो-हल्ला

सुनाई पड़ा । लवंगी मेरे आलिंगन से छूट छिटककर दूर जा खड़ी हुयी । उसने तीव्रता से, होश में आते ही दिडांग की कमर से लटका हुआ पत्थर का वज्रसा नुकीला भयंकर एक हथियार झपट लिया, कुछ देर के लिये वह सशंकित और भयभीत सी दिखलाई पड़ी पर दूसरे ही क्षण उसमें कराली काली का सा आवेश दिखलाई पड़ने लगे, भृकुटियाँ तन उठी, नेत्रों से चिन-गारियाँ सी फूटने लगी, मुख मण्डल तम तमाकर लाल हो गया, दाँतें किटकिटाने लगे, सीना फूलने लगा । जिस चट्टान के सहारे मूर्छित दिडांग टिका हुआ था, उस पर जाकर खड़ी हो गई उसके पीछे छिपते हुये सूर्य का लाल प्रकाश चक्र उसके चारों ओर घूम रहा हो । उसने तुरन्त मुझे निर्देश किया—' सितकेत ! यहाँ आ, मेरे पास ।" मैं अचम्भित था, सशंकित भी और भयभीत भी । सोचने लगा, एकाएक इसे क्या हुआ ? मैं किसी भी तरह उसके आदेश की अवहेलना न कर सका, सीधा उसके पास जा खड़ा हुआ, शोर गुल की आवाज निकट से निकटतर हो रही थी, उसने कहा—

"सितकेत, सुन तू, मेरा काम पूरा कर, मेरा सहारा बन, मेरी सहायता कर, उठाले अपना हथियार ।"

मैंने मजबूत लकड़ी की फाँस में चमकता हुआ मजबूत नुकीला लम्बोतरा पत्थर फंसाकर जानवर की आँत से कसकर बाँधकर एक हथियार बना लिया जिसका प्रयोग कई बार भूमि खोदने के लिये किया था—मैं अपना हथियार उठाकर आज्ञाकारी बालक की भाँति लवंगी के पास जा खड़ा हुआ, उसने मुझे उद्‌बोधित करती हुई के समान कहा—

"तू डरना मत, लड़ना पड़े तो लड़ना, मरना पड़े तो मरना, मरना और मारना, जीना है तो लड़कर ही जी सकता

है, डर मत अपने को देख, तू छोटा नहीं बड़ा है, बहुत बड़ा, मुझे देख मैंने मारा, तू चाहे तो तू भी मारेगा।"

लवंगी का एक-एक शब्द ऐसा लग रहा था जैसे महाभारत के युद्ध में युद्ध विरत अर्जुन की कदर्यता पर प्रबोधक कृष्ण कर्म-क्षेत्र में प्रविष्ट होने के लिये गीता का महान सन्देश दे रहे हों, दूसरे ही क्षण मुझे ऐसा लगा कि मुझमें छिपे पुरुष को किसी ने कायर कहकर झिझोड़ दिया. मैंने लवंगी को अपना शौर्य दिखलाने के लिये पूर्ण निश्चय कर लिया और वीरता के आवेश में तनकर खड़ा हो गया।

एकाएक झाड़ियों के झुण्डों में हलचल हुयी और चारों ओर से अनेकों आदिवासी निकल आये जिनमें अधिकांश प्रायः नग्न कुछ पत्ते और छाल लपेटे हुये अर्द्ध नग्न और एक दो जानवरों की खाल से गुप्तांग लपेटे हुये जिसके पास जानवर की जितनी बड़ी खाल थी वह उतना ही बड़ा योद्धा समझा जाता था। उन्होंने बदन पर मिट्टी के विचित्र निशान बना रखे थे, हाथों में तरह-तरह के पत्थर हाथों में लिये हुये डरावने और गलीच दिखाई पड़ रहे थे।

लवंगी ने एकाएक बड़े जोर से चीखा जिससे एक बार तो मैं भी हिल गया, न जाने स्वर की कोमलता कहाँ उड़ गई थी, उसने दिडांग को लात मार कर कहा, "मैंने इसे मारा, कबीले का सरदार दिडाँग, देखो इसे तुममें से जो लड़ेगा उसे भी मारूंगी" अब सरदार मैं हूं लवंगी सरदार" झुको" झुको .....।" उसने फिर चिल्लाया और दिडाँग का वज्र-शस्त्र ऊपर उठा दिया।

मैं स्वयं पर इन्द्रजाल सा अनुभव कर रहा था, मैं अत्यन्त

आवेश में भरा था, न जाने किस प्रेरणा से शक्ति प्राप्त करके

इस समय इतनी भीड़ को देखकर भी किंचित मात्र भी डर नहीं खा रहा था इसके विपरीत एक-एक पल लड़ने को समुद्यत था। लवंगी की चीख ने सारे कबीले को अपने स्थान पर स्थिर कर दिया वह लगातार मुझमें जोश भर रही थी, लवंगी ने झुकने का आदेश दिया तो सारा कबीला भयावृत्त था, दृढ़ अंगों वाले दिडाँग जैसे सरदार को मूर्छित देखकर उनके होश हवा हो गये थे। लवंगी के आदेश पर सबसे पहले मैं ही झुक गया, मेरे देखते ही एक एक करके सारा कबीला झुकता चला गया, केवल एक सशक्त व्यक्ति न झुक सका जिसकी मुखवृत्ति दिडांग से मिलती जुलती थी, शायद दिडाँग का भाई था। वह आगे आ गया था, उसने अत्यन्त आवेश में लवंगी पर भारी पत्थर का हथियार फेंक मारा, लवंगी एकाएक फुर्ती से एक ओर झुक गई। यदि ऐसा न करती तो वह हथियार अवश्य ही मरणान्तक घाव से पीड़ित कर देता। मैं झुकते-झुकते भी सभी कबीले वालों पर सावधानी से दृष्टि रख रहा था। बच जाने पर लवंगी मृत्यु के समान खिलखिलाकर हँस पड़ी, मेरी कायरता की सीमा समाप्त हो गई थी, मैं आपे में न रह सका, शेर की सी फुर्ती से छलाँग लगाकर लवंगी की ओर झपटने वाले उस दिडाँग के भाई पर अपने हथियार का भरपूर वार कर दिया, प्रहार इतना अचूक सशक्त रहा कि वह बुरी तरह से गिर पड़ा। खून का फव्वारा छूट गया और छाती की हड्डी चूर-चूर हो गई। कुछ ही क्षणों में उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

मेरी आँखें चढ़ी हुयी थी, मुझे कुछ सुजाई नहीं पड़ रहा था, मैं हथियार ऊपर उठाकर चिल्लाया......

"लवंगी सरदार है...जो इधर बढ़ा मारूंगा।" लवंगी हँस रही थी लोग जमीन पर लेट गये थे आत्म समर्पण की

अवस्था में दण्डवत । लवंगी ने कहा—

"तुमने मुझे सरदार माना, खड़े हो जाओ, आज के बाद मुझे कोई छूने की कोशिश न करे, जाओ नाचो, गाओ, खुशियां मनाओ।" डरते-डरते सब खड़े हो गये और धीरे-धीरे झुण्ड का झुण्ड चला गया। आश्चर्य चकित मैं सब देखता रहा।

लवंगी चट्टान से नीचे उतर आयी, आकर मेरे गले में बाँहे डाल दी। कैसा भाव था उसकी आँखों में·· कृतज्ञता का या कुछ और ? पुरुष पर विजय प्राप्त करके भी नारी पुरुष के समक्ष क्यों झुकी हुयी थी ? खैर कुछ भी हो पुरुष की लाज रह गई। लवंगी ने मुझसे पूछा—

'तूने जिसे मारा, जानता है, कौन था वह ?"

मैंने कहा—"दिडाँग का भाई।"

लवंगी सकते में आ गई—"तूने कैसे जाना उसको।"

मैंने कहा – 'देखकर।"

लवंगी के नेत्र आश्चर्य से फैलते जा रहे थे। वहाँ कोई दिव्य भाव प्रकट होने लगा धीरे-धीरे पलकें झुकने लगी और रोमाञ्च खड़े हो गये। उसने अपना सिर मेरी छाती पर रख दिया और निढाल होने लगी—

"सितकेत मैं तेरे विना नहीं रह सकती।" और मेरी बाँहो में नीचे को सरकती चली गई। इससे पहले कि उसका शरीर धरती पर गिर जाता मैं उसे बाँहों में भरकर कुटिया में ले गया वह मूर्छित होकर खड़ी न रह सकी, और धरती पर गिरने लगी, मैं बोझ सम्भालते-सम्भालते उस पर झुकने लगा झुकता ही चला गया।

दिडाँग को होश आने लगा था, पर इससे पहिले कि वह जागे मैंने विचार किया कि अपने भाई को मरा हुआ देख अपनी दुर्दशा पर अभिमानी दिडाँग को कभी पुनः क्रोध न आ जाये

और वह आक्रमण न कर दे। मैंने कुछ मजबूत लताएं तोड़कर एक पेड़ के सहारे खड़ा करके दिडांग को कस दिया। जल्दी-जल्दी कुछ मजबूत बाँस उखाड़े, गहराई और मजबूती के साथ बहुत थोड़ी-थोड़ी दूरी पर दिडांग के चारों ओर गाड़ दिये और मजबूत बेलों से पूरता चला गया। मैं अन्दर कूदा और दिडांग का खोल कर बाहर चला आया। दिडांग समझ नहीं पा रहा था कि मैं क्या कर रहा हूं। लगता था उसके बदन में पीड़ा हो रही थी और हो सकता है कि उसकी पीड़ा के रूप में इन्सान की इस पहली कैद को देखकर मानवता कराह उठी हो। उसकी जीभ सूखती जा रही ओठों पर पपड़ी जमने लगी उसने कहा—

'पानी।"

मेरे सामने अद्भुत समस्या खड़ी हो गई पानी कैसे दूं, मेरी आत्मा ने साफ़ कह दिया कि किसी भी हालत में निहत्थे दिडांग को नहीं मारा जा सकता, क्योंकि उसने आत्म समर्पण किया है। मैंने कुछ बड़े-बड़े पत्ते तोड़े और मोड़कर दौना बनाया, दौड़कर झरने के पास से जल भर लाया। बाँसों के बीच से हाथ घुसाकर मैंने उसे पानी पिलाया। वह होश में आ गया, उसने आस पास की चीजें देखना और टटोलना शुरू किया। मेरी आशंका झूठी नहीं थी, अपने भाई की लाश देखते ही उसका हाथ अपने हथियार पर गया। जिसे लवङ्गी पहले ही झटक चुकी थी। तमतमाहट में उसने बाहर आना चाहा पर बांस बहुत मजबूती से गड़े थे और बंधे भी। ऊपर चढ़कर निकलना चाहा किन्तु पैर मजबूत बेलों से बंधे हुये थे और पेड़ से मिलाकर मजबूत बेलों का जाल बन्धा हुआ दिख रहा था। वह एक प्रकार से पींजरे में बन्द था। वह बेचैन होकर गुस्से में चिल्लाया—

लवङ्गी भी होश में आने पर मुझे अन्दर न पाकर बाहर दौड़ आयी थी। लवङ्गी के आते ही दिडांग सहमकर भय से

पीछे गिर गया। लवङ्गी ने कहा—"बैठ जा।", और वह बैठ गया। उसने फिर कहा—"मैं सरदार हूं...... तू यहां से मत उठना नहीं तो मार दूंगी। देखले अपने भाई को......वह पड़ा, तेरे से भी ज्यादा तगड़ा था वह......।"

वह डर कर बैठ रहा और कातर दृष्टि से हम दोनों की ओर देखता रहा, शायद आंखों में आंसू भी झलक उठे थे किसी बेबसी में। लवङ्गी ने प्यार भरी दृष्टि फेंकते हुये जाल की ओर संकेत करके पूछा, "यह किसने बनाया ?"

मैंने कहा "मैंने।"

उसने पूछा "क्यूं ?"

यह भाग न जाये, और हम पर हमला न कर दे, "यूं।"

जैसे खुशी का झोंका लगने से झूम गई हो, गद्‌गद होकर "सितकेत"...कहते हुए मेरी बांह पर काट खाया। कोई घाव नहीं हुआ था, मैंने उसे प्यार से हटाकर निशान को मिटाना शुरू कर दिया पर मेरा एक-एक काम उसे मुझसे चिपका कर उसके जीवन को मेरे हाथों में बांधता जा रहा था। मैंने कहा...

"लवङ्गी, बैठ, जा... तू सरदार है, कुटिया में चली जा, तू मुझे बता मैं क्या करूं ?"

लवङ्गी ने कहा, 'पर, तेरी तो सरदार नहीं हूं रे, तू तो आजाद है ?"

मैंने कहा—"तू बैठ मैं "अभी आया और एकाएक छूट कर बेतहाश दौड़ पड़ा... दौड़ता चला गया।

लौट कर आया तो काफी देर हो चुकी थी, पर वह तो टस से मस न हो सकी थी, पूर्ण रूप से मेरी प्रतीक्षा कर रही थी मुझे देखते ही फूल की तरह खिल पड़ी। मेरे एक हाथ में मीठे केले का एक चरखा था और दूसरे में कुछ पत्थर। पत्थर मैंने कोने में एक ओर डाल दिये और केले लवङ्गी की गोद में।

"लवङ्गी ने उलाहना देते हुये शिकायत की और रूठने का अभिनय किया, कहाँ गया था रे तू ? जहाँ कह गया था वहीं बैठी हूं......।"

मैंने बात काट कर कहा, "तुम सरदार हो जी, तुम पर मेरा हुक्म थोड़े ही चलता है, तुम उठ जाती।"

'यही तो मेरी समझ में नहीं आता है रे ! कि मैं सरदार हूं...फिर भी तेरी बात नहीं टाल सकती ?'

मैं फूलकर कुप्पा हुआ आ रहा था।

मुझे पत्तों के दोने बनाना आ गये थे, दो बड़े-बड़े दोनों में झरने से जल भर लाया और लवङ्गी के सामने रख कर कहा—"कुछ खा पी लो सरदार फिर अपने सेवकों की देखभाल करना।"

लवङ्गी बार-बार सरदार कहने से चिढ़ने लगी और मुझे इसमें मजा आने लगा। वह कुछ बोली नहीं, खाली मुंह बिचका दिया। उसने दो केले तोड़कर मेरे हाथ में दे दिये। मैंने आग्रह से कहा—

"सरदार...पहले तू।"

लवङ्गी ने कहा 'सरदार का हुक्म है, पहले तू।"

लवङ्गी की प्रतिभा सहराने योग्य थी, उसकी ग्राह्य शक्ति कितनी सुन्दर थी। हम खा रहे थे और खाते खाते हंसते जा रहे थे एक नयी जिन्दगी शुरू करते हुये।

लवङ्गी ने कहा, "तू पहला आदमी है रे सित्तू। जो एक नारी की इतनी सेवा कर रहा है। मेरा मन करता है कि दुनिया का सब कुछ तुझे दे दूं। आज तक सब कबीले में अपना अलग-अलग जुटाते थे।"

मैंने कहा—"खाने में तो आज अजीब मजा आ रहा है।"

लवङ्गी बोली, "हम साथ-साथ जो खा रहे हैं बैठकर

बांट कर, छीने झपटे बिना। मैं मारे कबीले को ऐसा ही बनाना चाहती हूं कितना अच्छा हो कबीले की हर औरत यह सुख भोग सके। मैं उनकी सरदार हूँ। उनकी माँ, मैं उनके लिये यह सब कुछ करना चाहती हूं।"

मैंने स्वयं को स्मृतिकार की भाँति अनुभव किया—"अवश्य उनके सुख का ध्यान तुम्हें रखना ही चाहिये।"

लवङ्गी ने कहा, 'पर एक बात है···एक काम तुझे करना होगा।"

"क्या ?"

'मुझसे अलग न होना।"

"नही हो सकूंगा।"

"मुझे अच्छी बातें बताया करेगा।"

"जरूर बताऊंगा।"

"मेरी प्रजा, मेरे कबीले के लिये भी।"

"मैं नियम बनाऊंगा।"

"सच ! सच !!"

उसने प्रकृति की अनोखी करामात एक केला तोड़ा। एक ही आकार में दो जुड़ी हुई फलियां······बोली, "देख ये कैसे लगते हैं ?"

दो, स्त्री पुरुष, एक साथ दो बदन एक प्राण।"

"प्राण क्या ?"

"जिसके बिना हम हम नहीं, दिबांग का भाई भी नहीं रहा।"

लवङ्गी की आँखों में आँसू तैरने लगे।

"तू चला गया तो मैं फिर वैसी ही हो जाऊंगी। मेरे मन्दर का सब कुछ चला जायेगा, मुझे कबीले वाले भी नहीं छोड़ेंगे, मेरा बल तू ही है नहीं तो ··।"

"नहीं तो क्या ····· ?"

उस सबला को अबला की भूमिका में आते देख मेरा पुरुष तो फूलकर आपे से बाहर होता जा रहा था किन्तु दयार्द्र हृदय अन्दर ही अन्दर सिसक उठा सान्त्वना देते हुए कहा –

"ऐसा नहीं, ऐसा न कहो सरदार। तुम्हारे हुक्म को न मानकर मैं इस जंगल में कैसे रह सकूंगा।"

"पर दूसरे जंगल में तो भाग जायेगा ना ?" और वहाँ कोई दूसरी ···· ?".

मुझे उसके भोलेपन पर हंसी भी आ रही थी और तरस भी। मैंने औरत की सौतिया डाह को देखा। बातों में उलझाकर उसे दूसरी ओर घुमाते हुये कहा "मैं कहीं न जाऊंगा लवङ्गी, तू खुश हो ?"

वह खुश थी। "ऐसा बोल ऐसा बोल मेरे सितवा।"

मैंने गर्व से मुस्कराकर कहा "आज एक नई बात दिखाऊंगा तुझे, लवङ्गी।"

"क्या ?" लवङ्गी ने पूछा।

"उसके साथ भी एक कहानी जुड़ी है।"

"सुना।"

"मैं जब तेरे लिये फल-फूल लेने जा रहा था तो दौड़ते-दौड़ते पत्थर से टकराकर ठोकर लगी, चोट तो मुझे नहीं लगी क्योंकि ठोकर लगते ही मैं झुक गया था किन्तु एक अचम्भे की बात है कि मेरे हाथ से एक पत्थर छिटककर एक दूसरे पत्थर से जोर से जा टकराया और उसमें चिंगारी सी निकली जैसे रात को उड़ने वाले कीड़ों की चमक। मुझे बड़ा मजा आया यह तमाशा देखकर। खेल ही खेल में मैंने कई बार उस पत्थर को पत्थर पर दे मारा, बार-बार चमक सी निकलती रही। मैंने एक बार बहुत जोर से चोट की, चिंगारी का बड़ा सा टुकड़ा घास की

सूखी पत्तियों पर जा पड़ा, वे पत्तियां एक साथ भभक उठीं, जैसी बाँसों के जंगलों में लगी हुयी आग मुझे स्मरण हो आया कि एक बार एक जलती हुयी लकड़ी हाथ में उठा लेने पर एक हिंसक जानवर से जान बचा पाने में समर्थ हुआ था, वे पत्थर चुनकर हाथों में उठा केलों के साथ ही ले आया। अभी जब हम केले खा रहे थे तो मैंने सोचा कि एक केला उस चिंगारी पर रख दूं क्योंकि एक दिन जंगल का जमीन के भीतर पैदा होने वाला फल उस जंगल में लगी हुयी आग के पास पड़ा हुआ खाकर देखा था मुझे वह बहुत अच्छा लगा था।

लवङ्गी मेरी बात बहुत प्यार से सुन रही थी उसके कपोलों पर लाली दौड़ने लगी। उसने कहा।--

"मुझे दिखलायेगा।"

मैंने कहा --"क्यों नहीं? मारे कबीले को दिखलाऊंगा।"

वह खुश थी "फिर तो तू भी देख लेना कि सब वही कहते है ना जो मैं कहतीं हूं।"

मैंने कहा "क्या?"

उसने कहा---"औरों से अलग मेरा सितकेत।"

"पर एक डर है······।"

मैंने ही बात पूरी करदी --"कहीं कबीले की सारी औरतें मेरे पीछे न पड़ जायें"

लवङ्गी ने कहा—"सच, तू है ही ऐसा।"

हम दोनों उठाकर हंस पड़े।

"अभी आई।" कह कर, लवङ्गी तुरन्त उठी और जंगल की ओर दौड़ गई।

मैं भी अपने स्थान से उठा। कुटिया के पीछे कुछ पोली धरती थी, अपने हथियार से खोदकर एक स्वादिष्ट फल वाले पीले पौधे के सफेद-सफेद पतले पतले लवङ्गी के दांतों जैसे छोटे-

छोटे दाने डाल दिये थे और कई बार की बारिश से उनमें अंकुर फूट निकले थे जिन्हें बढ़ते हुए देख कर मैं बहुत खुश होता था। खुशी में फिर खुशी मिलाने के लिये मैं कुटिया के पीछे गया और तब तो प्रसन्नता का पारावार उमड़ पड़ा जबकि मैंने आज प्रथम बार उनमें लगी हुयी मण्डारियाँ देखी। बीज डालने की बात मुझे इसलिये सूझी थी कि लवङ्गी के प्यार में गुलाब के फूल अच्छे लगते थे जिनके लिये गुलाब की डालों को दूसरे स्थान से तोड़ कुटिया में लगाया करता था, सूखने पर उखाड़कर फेंक दूसरी डालें लगा देता था। एक दिन एक डाल बिना उखाड़े रह गयीं और अगले दिन देखने पर पता चला कि वह हरी हो चली है, कुछ समय बाद तो उसमें कोपलें ही फूटने लगी और आज तो वह गमकते हुये फूलों के गुच्छों से लदा पौधा बन गया है।

मेरी कुटिया कई बार बनी और कई बार टूटी पर जब भी मैंने उसे दोबारा बनाया नये ढंग से नया रूप देकर ही बनाया है। यह सोचकर कि लवङ्गी दूर रहती है तो बीच की दूरी दोनों को पीड़ा देती है। लवङ्गी की एक कुटिया अपने पास ही बनाने का विचार किया, पर उसे तो कबीले का ही ध्यान सताया करता है। सोचा, अबकी बार लवङ्गीं से कहूंगा कि वह, थोड़ी दूर पर वृक्षों की आड़ में सोते के उस पार हमारे जैसे झोंपड़े बना लेने के लिये अपने लोगों से कहे। औरतें झोपड़ों की रक्षा किया करें और मर्द फल-फूल लाकर बुरे दिनों के लिये भी इकट्ठा किया करें जिससे कभी-कभी भूखों मरने से बच सकें। नये विचार को क्रियान्वित करने के लिये मैं मचल उठा, व्याकुलता से लवङ्गी की प्रतीक्षा करने लगा।

लवङ्गी जिधर दौड़ कर गयी थी उधर देखा तो वह कबीले के प्राणियों को पीछे लिये चली आ रही थी। वह कुटिया के

पास खड़ी हो गयी और उन्हें मेरा काम देखने का आदेश दिया। सूखी पत्ती और सूखा घास इकठ्ठा करके कोने में पड़े पत्थरों को टकरा उनसे चिंगारी निकाली, आग भभक उठी। आदिवासी आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगे। लौ ज्यूं ज्यूं ऊपर उठती वे घबराने लगते कई तो काँपने भी लगे, कोई उठकर भागने का प्रयत्न करने लगे। लवङ्गी ने सान्त्वना दी—

"बैठो बैठो ।"

मैंने कहा—"डरो नहीं यह आग है, यह हमें जानवरों से बचायेगी, इसमें कुछ भूनकर भी खा सकते हैं, इसमें सूखी घास और लकड़ी डालते रहो ये जलती रहे, बुझने न पाये. यही प्रयत्न करते रहेंगे। जब जिसे आवश्यकता हो इससे जलती हुयी लकड़ी उठा कर अपनी रक्षा कर सकता है।" फिर लवङ्गी की ओर उन्मुख होकर कहा—

'सरदार। मैंने एक बात सोची है?"

"क्या।"

"कबीले के सब एक साथ रहें।"

"कैसे?"

' झरने के पास हमारे जैसे झोंपड़े बनाकर।"

' पर उन्हें तो आते नहीं।"

"मैं बतलाऊंगा। औरतें घर रहकर आग को बराबर जलाये रखेंगी, और खाने तथा शिकार के लिये मर्द जंगल में जाया करेंगे।"

"ऐसा ही हो।" लवङ्गी ने आदेश दिया।

मर्दों के चेहरे फीके पड़ गये और औरतों के चेहरे खुशी से चमक उठे। मर्दों ने पेड़ से बन्धे पींजड़े में बन्द दिडांग को देखा और एक आह भर के रह गये। पर मैं मन ही मन अपनी योजना पर मुस्करा रहा था। लवङ्गी के आदेश पर किञ्चित

डरते-डरते सबने एक एक लकड़ी आग में लगाई। यह सब मेरी कुटिया के सामने खुले स्थान में हो रहा था। सूरज डूब गया, आसमान ने अंधेरे के काले पर्दे चारों ओर गिरा दिये, चट्टानों पर पड़कर ताल देता हुआ झरने का झरझर करता हुआ जल। आने वाली सभ्यता को नये स्वर प्रदान कर रहा था। जलाई हुई आग होली की तरह जगमगा रही थी, आग की ज्वालाओं ने दूर-दूर तक प्रकाश फैला दिया था किन्तु फिर भी प्रकाश और अन्धकार के संघर्ष में वृक्षों और चट्टानों से बनी काया छाया भूत प्रेतो की माया के समान मंडरा मंडरा कर इधर-उधर दौड़ती हुयी दिखलाई पड़ रही थी। आदिवासी डर से कंप कंपा एक कोने में सिमटे जा रहे थे, दिडाँग फटी-फटी आँखों से लगातार देखे जा रहा था।

प्रसन्नता में मन ऊपर उठ जाता है आदिवासियों को भयभीत देखकर उनकी हीन अवस्था पर मैं विह्वल हो उठा, उनके त्राण के लिये प्रयत्नशील होते हुये कहा—

"देखो वे क्या ?" पानी में, पत्थरों में और पेड़ों के चमकीले पत्तों में आदिवासी देखने लगे—जैसे हजारों काँच के टुकड़े चमकते हुये पत्थर के रूप में किसी ने बिखरा दिये हों, आदिवासी उन्हें उठा उठाकर खेलने लगे, कुछ देर इस क्रीड़ा में उलझे रहे फिर अलसाने लगे, मैंने निकट बुलाकर प्यार से समझाया—"आओ इधर मेरी कुटिया के उस तरफ सब सो जाओ, मैं और लवङ्गी जागकर तुम्हारी रक्षा करेंगे, निडर रहो कोई जानवर नहीं आयेगा, आज हमारी खुशी का दिन है हम सब खुले आसमान के नीचे रात बितायेंगे, यह हमारी आजादी का दिन है, वृक्षों की डाल या पहाड़ों की गुफाओं में सोने का दिन नहीं, अगर कोई जानवर आया तो दिडाँग के भाई की तरह मैं मार गिराऊंगा।"

लवङ्गी ने मेरा अनुमोदन किया—"ऐसा ही करो।"

मेरी कुटिया के पास मेला लग गया, आपस में बातें करते-करते सब नींद के झोकों में खो गये।

मेरे हाथ में मेरा हथियार था, पत्थर का चट्टान पर बैठ दिडांग को देख सोचने लगा, "पुरुष ने पुरुष को बन्दी बनाकर परतंत्रता के बीज बो दिये, पर बन्दी न बनाता तो न जाने वह कितने जीवन बर्बाद कर देता, क्या दिडांग हम सब की तरह नहीं रह सकता क्यों नहीं ? इसी लिये तो मैंने उसे मारा नहीं, कोई दिन तो ऐसा होगा ही जब उसके अन्दर धधकने वाली हिंसा शान्त होकर ही रहेगी उसका पशुत्व मर कर अमर मानवता का रूप धारण करेगा, तभी न मानवता स्वतन्त्र होकर विचरण कर सकेगी ?"

मेरा मन दयाद्र हो उठा। कुछ फल उठा कर दिडांग के पास रक्खे, पानी का बड़ा सा दोना उसे भरकर दिया। मैंने उसकी आँखों में झाँककर देखा, भावों की उथल पुथल मची थी, कभी कृतज्ञता, कभी घृणा, कभी प्रसन्नता कभी क्रोध, और कभी तुष्टि। क्रोध और कातरता को एक साथ मिलाकर उसने कहा——

'मर्द को बाँध दिया तूने, गुलाम बना दिय...।"
मैं हंस पड़ा सोचने लगा दिडांग में और मुझमे कुछ फर्क ज़रूर है, वह अपने ढंग से सोचता और मैं अपने।

धीरे-धीरे दिडांग नींद के नशे में अपनी जगह लुढक गया। मैंने अंगड़ाइयों में झूलते लवङ्गी के बदन को देखकर कहा—"नींद आ रही है सरदार ! जाओ सो जाओ, सेवा करने के लिये यह सेवक है।" एक बार तो वह झल्लायी पर दूसरे ही क्षण सारे जग की कातरता अपने स्वर में संजोकर आर्त्तनाद सा कर उठी—'अब तो ऐसा न बोल मेरे सितवा, सारे जग की

खुशियाँ बांटकर मेरी झोली में अंगार क्यूं डाल रहा है रे ।"

आदमी जब भावुक होता है तो कविता अपने आप जाग उठती है। उसके अन्तर्मन की चीख मुझे साफ़ सुनाई पड़ी। मैंने कहा—"लवङ्गी मुझे गलत मत समझ। जब से तूने दिडांग को पछाड़ा तू मुझे अजीब सी लगने लगी है, मैं सुन्दरता के साथ तेरी शक्ति का भी लोहा मानने लगा हूं तू मुझे मुझसे बड़ी औरों से अलग सबसे बड़ी लगती है, मेरा मन तुझे सिर पर, आँखों पर, दिल पर बैठा कर झुकने को चाहता है।" लवङ्गी आनन्द से कांप उठी, उसके शरीर में स्फुरण होने लगा, शरीर रोमाँचित हो उठा आँखों से प्रेम-मद झरने लगा, और उन्मादिनी की भाँति मुझे बाँहों में भरकर मेरी आँखों में इस तरह झाँकने लगी कि मैं एकाएक भूल भुलैया में पड़ गया।

हम दोनों कुछ दे. के लिये स्थिति को भूल बैठे। मेरा हथियार छूटकर चट्टान पर गिरा और ठ्क्क की आवाज़ हुयी, मैं चौंका, किसी आदिवासी की आंख खुल गई थी शायद वह हमारी ओर ही देख रहा था, लजाकर मैं उठ गया, लवङ्गी भी चौंकी, पर जाकर देखने पर पता चला, भ्रम था। मैं अपनी मूर्खता पर हंसने लगा—लवङ्गी ने पूछा—

"क्यों हंसा तू ?"

' कोई जाग गया था।"

"जागा तो क्या हुआ, कोई चोरी की है हमने ?"

मैंने कहा—"तू सरदार है, सोच समझ कर चल .'

लवङ्गी तड़प उठी—' मुझे नहीं चाहिये ऐसी सरदारी।"

मैंने चोट की—"फिर तुझमें और दिडांग में क्या फर्क ?"

उसकी आँखें भर उठी—' मैं मजबूर हूं, क्या करूं ?"

मेरा दर्शन जागने लगा—"इसी लिये मैंने नहीं मारा दिडांग को, हम सब कहीं न कहीं मजबूर हैं, हम सबको अपने

आपको बदलना होगा। लवङ्गी समय बदलता है, चीजें बदलती हैं, प्रकृति के रङ्ग बदलते हैं वृक्षों और चट्टानों के रूप बदलते हैं सारा जीवन बदल जाता है, इन्सान को समय के अनुरूप अपने को बदलना ही होगा।"

लवङ्गी ने आशंका प्रकट की—"पर तू बदल गया तो मेरा सब कुछ बदल जायेगा, मैं कहीं की न रह पाऊंगी ।"

लवङ्गी को तो प्रेम का नशा चढ़ा हुआ था मैं अपनी कह रहा था और वह अपनी। मैंने कहा, लवङ्गी बात को समझो, उस तरह बदलने की बात नहीं, यूं तो न तुम बदलोगी और न मैं, लेकिन काम बदलने होंगे, ढंग बदलने होंगे, रहने सहने का तरीका बदलना होगा, आज और कल में क्या तुम्हें कोई फर्क दिखलाई नहीं पड़ता। गुफाओं में घुसकर सोने वाले आकाश की छत्र छाया में निर्भय सो रहे हैं। जानवरों के डर से पेड़ की शाखाओं पर लटके-लटके रात गुजार देने वाले धरती मैया की गोद में पड़े मस्ता रहे हैं। अन्धेरे के भारी बदन को चीर कर रोशनी के हाथ खुशी से नाचते हुये दिखलाई पड़ रहे हैं, क्या हम नहीं बदलेंगे।"

सम्भवतः उसे कोई नई बात सूझी, वह अकारण हीं हँस दी, उसके कुंदकली से सफेद दांतों को देख मुझे अपने पौधों की याद आई। उसने आसमान में तैरते हुये चांद को देखकर कहा—

"तू बदलने को कहता है, एक बात मैं रोज देखती हूं, दिन में वह आग का गोला निकलता हुआ देखा तो सारा आसमान चमका-चमका लगा, रात को तेरे मुंह जैसा गोल-गोल यह निकला तो ठंडी-ठंडी धरती चमचम कर उठी। न वह बदला है और न यह ? तेरी जलाई हुई आग ही कैसे बदल जायेगी ?" उसने मेरे गले में बांहें डाल दी, दिल पर चीटियां सी रेंगने लगी, बदन अकड़ने लगा। दो गोलकों को मैंने अपनी

छाती से टकराते हुये अनुभव किया न जाने किस अनजान शक्ति ने हाथों को उठाकर उसकी कमर पर रख दिया, उत्कण्ठित मन आंखों मे गहराई खोजने लगा, दिखाई पड़ा वहाँ केवल मैं था··· मैं ··· । अनुभव किया·· कविता जाग रही है, लवङ्गी से कोई भी बात कहना व्यर्थ होगा। सारी विचार राशि गम्भीरता को लेकर हवा हो गई। चांद बादलों के पीछे छिप गया था अंधेरे ने बाँहे कसना शुरु कर दिया और बाँहे कसती चली गई।

·· कह नहीं सकता कब तक यह स्थिति बनी रही, आंख खुली तो देखा, दिडाँग चिल्ला रहा था—

"शेरा · शेरा·· तुम्बी तु तु म्बी।"

वह अत्यधिक उद्वेलित था और बाँसों को उखाड़ने की चेष्टा करते हूये उछल-कूद मचा रहा था। मैं दौड़ा, कुटिया के आगे आया। मेरे हाथ में शस्त्र था। सोने वाले जाग चुके थे, शायद बहुत अधिक डर गये थे और आग के पास सरकते जा रहे थे। कोई जंगली जानवर किसी स्त्री को उठाये तलहटी की ओर दौड़ा जा रहा था। स्थिति को भाँप पहाड़ी का चक्कर दे मैं ऊपर पहुंचा और उस पर छल्लाँग लगादीं, जानवर अचानक आक्रमण से चौंक कर घबरा उठा, तुम्बी उसकी पकड़ से छूट गई, वह गरजने लगा और भयंकर गुर्राहट के साथ मुझ पर कूद पड़ा। द्वन्द्व युद्ध होने लगा। हंसी भी आती है और भय से रोंगटे भी खड़े हो जाते हैं। कैसा युद्ध था इतनी शक्ति मुझमें कहाँ से आ गई थी। शेर कभी मुझे दबोच लेता और कभी मैं उसे पटक देता। उसकी गर्जना से सारी घाटी गूंज रही थी। बहुत से पक्षी चिल्ला उठे थे। उसकी भयंकर गोल-गोल पुतलियों में बिजली चमक उठी थी। उसने कई बार लम्बी-लम्बी दाढ़ों वाला मुंह खोलकर मुझे गपकना चाहा, पर मैं फुर्तीले ढंग से बच गया और कमर पर पहुच कर गर्दन को दबोच लिया। उसने

पलटा लिया और मेरी छाती पर सवार हो गया। मैं निरन्तर जीवन रक्षा का प्रयत्न कर रहा था। तुम्बी पड़ी कराह रही थी। दोनों हाथों से अपने हथियार को पकड़े शेर को ऊपर ही रोकने की चेष्टा कर रहा था मैं। एकाएक पागलों की तरह दौड़कर आती हुयी लवङ्गी ने दिडाङ्ग वाला हथियार शेर की कोख में घुसेड़ दिया, हथियार अन्दर घुसता हुआ आर पार हो गया, इधर मैंने उसका ध्यान पलटते ही अपना सारा हथियार उसके हलक में उतार दिया था, उसने कमर के बल पलटना चाहा और छिटककर दूर जा पड़ा और चिल्ला-चिल्ला कर दम तोड़ दिया। लवङ्गी लगातार अब तक भी उस पर लगातार पत्थरों के वार करती जा रही थी।

लवङ्गी के पीछे दौड़कर आते हुये सारे आदिवासी वहीं इकठ्ठा हो गये थे उनमें से बहुत से तो अब भी डर के कारण पेड़ की शाखाओं पर टंग गये थे। मैंने लवङ्गी को रोका, पर वह तो क्रोध से अन्धी हो रही थी—

"नहीं नहीं अबकी बार मैं नहीं रुकूंगी तू हर बार ···।', मेरा बदन जख्मों से भरा था तो भी मैं बड़े जोरों से हंस पड़ा, मैंने कहा ··वह मर चुका है सरदार ··· ।"

सरदार कहते ही वह तड़प उठी और हाथ का पत्थर मेरी ओर कर दिया पर दूसरे ही क्षण मुझे हंसता देख हाथ वहीं रुक गये और हाथ का पत्थर उसके हाथ से छूटकर वहीं गिर गया वह रुठ कर लजा गई और अन्य आदिवासियों को सामने पाकर मेरी तरह हंस पड़ी···।

"तू मौत के सामने भी हंसता है ?"

मैंने उसके दोनों हाथ पकड़ कर कहा, "क्योंकि तू मौत को भी मार देती है री। जब तक तू साथ है मुझे क्या डर, तू तो मेरी शक्ति है।"

लवङ्गी पर जैसे आसमान से खुशियों की बरखा हो गई, वह झूम उठी और उसने कहा—"सितकेत···।"

वह मेरे कन्धों को झकझोर कर उछलने और कूदने लगी। उसके मुंह से संगीत के स्वर फूटने लगे और पैरों में नृत्य की गति···"मेरा···सितकेत···मेरा सितकेत बचा

मेरा संसार नचा आ ऽ ऽ ऽ।"

लवङ्गी के अनुकरण पर हर आदिवासी ने थिरकना प्रारम्भ कर दिया। स्त्रियाँ और पुरुष जोड़ें बना बनाकर हाथ पकड़-पकड़ कर उछलने कूदने लगे। मेरा मन भी बल्लियों उछल रहा था। हम सब कुछ भूल गये। तूम्बी का ध्यान ही न रहा। जब उसकी कराहट सुनाई पड़ी तो होश आया, उसे अधिक चोट नहीं आई थी क्योंकि शेर उसे दूर न लेजा पाया था। दिङाङ्ग ने ठीक मौके पर चेता दिया था। शेर ने उसका एक पैर पकड़ा था और वह उससे बचने के प्रतत्न में उलट-पलटकर कई बार हाथों के बल चली थी और कई बार घिसटती हुयी। उसको कमर और उंगलियों में खरोंचे आयी थी। मैं लवङ्गी को छोड़ उसके पास गया और उसे बाँहों में उठाकर शेर की लाश की तरफ संकेत करते हुये कपा—"उसे भी उठवा लाओ···सरदार।" लवङ्गी ने ऐसे मुंह बिचकाया जैसे सारा मजा किरकिरा हो गया हो···क्यों ? यह जाने बिना ही मैं कुटिया की ओर लौट पड़ा, पर लवङ्गी मेरा कहा न टाल सकी।

मैंने झरने का पानी लाकर तूम्बी के घावों को धोया और एक पौधे के पत्ते छेतकर रख दिये। मैं यह प्रयोग पहले भी कर चुका था। एक बार जब मुझे चोट लग गई थी तो अचानक खून रोकने के लिये किसी पौधे के पत्ता उस पर लगा दिया था, और मसल-मसल कर देखने लगा था। खेल ही खेल में उस

पर रस टपका दिया, मुझे बड़ी शान्ति मिली और कुछ दिनों में

घाव ठीक हो गया। तब से वह मेरे लिये दवाई का काम करने लगा था।

मुझे आज एक विचार और सूझा। जलती हुई आग वदन को आराम देती है, क्यों न घाव पर भी इसे आजमा कर देखूं," मैंने हल्का-हल्का सेका तूम्बी आरान की नींद ले रही थी, लगता था जैसे वह सारी रात जगी है।

शेर को घसीटकर लाते हुये आदिवासियों के आगे-आगे लवङ्गी चली आ रही थी जैसे कि पूर्व दिशा में वादलों के रथ पर सवार होकर उषा अपनी लाली आसमान में छिटका रही हो।

जब सब आ चुके, मेंने कहा—

"सरदार हमें हुक्म दो कि कुछ देर जंगल में घूम आयें।"

गुस्सा लवङ्गी की नाक पर आ चुका था—कड़कती हुई आवाज में कहा ···"जाओ···।" लगता था क्षोभ के कारण स्वर में कुछ विरक्ति भर गई थी : "सब जाओ······" फिर थोड़ा रुक कर मेरी ओर देखते हुये कहा···"जल्दी ही आ जाना।" हम एक एक कर चल दिये और वह विरक्त सी आग की लकड़ियों को ठीक करने लगी।

लवङ्गी वहुत चिढ़ी हुयी थी उस चिढ़ पर मैं अन्दर ही अन्दर कितना खुश था, कह नहीं सकता ? मैं जब विना कुछ कहे सुने चल दिया तो उसका उद्वेग चरम सीमा पर पहूंच चुका था। वह चिल्ला पड़ी······

तुम रुक जाओ। क्या सबके सब मुझे अकेला छोड़ जायेंगे ? अपनी हंसी को बरबस रोकते हुये, उसकी जलती हुई आँखों में झाँककर कहा—"आपको क्या डर है सरदार······आप तो बहादुर हैं।"

लवङ्गी ने दाँत किटकिटाकर कहा—"चुप रहो······।"

मैंने उसी तरह चुटकी ली—"चुप हैं सरदार······।"

वह बुरी तरह मुँह बिकड़ाने लगी, "सरदार, सरदार······।" अन्तिम शब्दों का शायद ज़ान बूझ कर मुँह में रोक लिया था, उसका बदन काँप उठा, हाथ हिले, गहरी साँस ली और आँसू निकल पड़े। लगा जैसे हृदय का सम्पूर्ण प्रेमोवेग क्रोध की अग्नि के ताप से भाप बनकर बाहर निकलने लगा हो, बात जो मुँह से पूरी न हो सकी थी आँखों ने कह दी थी, बची कुची हिचकियों ने पूरी कर दी।

आदिवासी चले गये थे, दिडाँग अब भी खर्राटें ले रहा था, तुम्बी कुटिया में सो रही थी, बाहर जो आग लवङ्गी में लग रही थी उसकी चिंगारियाँ मुझे भी धधकाने लगीं। "मैंने उसे बाँहों में लेना चाहा पर वह छिटककर दूर जा खड़ी हुई······मैंने फिर मनुहार भरा प्रयास किया और वह मान गई और अपना सिर मेरी छाती पर रखकर कानों से हृदय की धड़कन सुनने लगी, जैसे उसकी आशंका मेरे हृदय की टोह ले रही हो –

"एक बात पूछूँ सितवन्त ?"

"पूछ एक नहीं दो।"

"यूँ बता तूने तुम्बी के लिए अपनी जान खतरे में क्यूँ डाली !"

मैं सिर से लेकर पैर तक काँप उठा, प्रेम का नशा हवा हो गया, सोचने लगा, कौन–सी आग है यह जो आनन्द के बन को जला कर खाक कर देना चाहती है ? एक कांटा–सा हृदय की गहराई में उतरता चला गया। जो अब तक नहीं कह सका था आज कहना पड़ा —

' मुझे दुःख है लवङ्गी कि तू मुझे अब तक न पहचान सकी कि मैं तुझसे कितना प्यार करता हूँ······मैं तुझे चाहता हूँ··· सिर्फ तुझे······।"

लवङ्गी रस से भर उठी,·· पर फिर भी जैसे बदला लेना

चाह ी हो—

"जाना, पर समझ में न आया, कौन यूँ अपनी जान दूसरे के लिए दाँव पर लगाना है ?" .....दिङाँग ने मुझे खींचा तो चुप रहा तू और शेर ने तूम्बी को उठाया तो तू .....ऐसा क्या है तूम्बी में जो मुझमें नहीं ?"

कोई उत्तर नहीं था मेरे पास, मैंने अत्यन्त संयत होकर, बहुत गम्भीरता से, भारी स्वर में कहा—

"जो तूम्बी में और तुममें है वह तुम खूब जानती हो सोचोगी तो जान जाओगी कि मैं किसको प्यार करता हूँ। तूम्बी से मेरी पहिचान है ही कितनी।

मैं अनजान राही .....निराशा से घिरा अकेला एक चट्टान पर पड़ा था, दुनियाँ से दूर, पर निराशा के बादलों में आशा की बिजली की तरह तुम कड़की, मैं जाग गया, करुणा की आसार धारा-वर्षा हो चली, मैं "हरा हरा उठा। प्रेम का नीरव-स्रोत तुम से बह उठा, मुझे जीवन मिल गया, मैं गतिशील हो उठा। दिङाँग ने जब तुम्हारा हाथ खींचा मैं मचलता गया आतंक से भर उठा, अवरोध उपस्थित हुआ, मैं अटक गया। तुमने टक्कर दी और रुकावट हट गई। मुझे तीव्र प्रवाह की गति मिली मैं तुम्हारी शक्ति के साथ बह चला, रुका नहीं, झुका नहीं, हटा नहीं, पर पर पर ..आज लगता है यह प्रवाह उथली भूमि पर आ उतरा है, कहीं ऐसा न हो जल में फिर सड़ाँध .... ।"

मैं शून्य में ताक रहा था, भूत और भविष्य की कड़ियों को जोड़ने वाले वर्तमान का फंदा फसाकर लटक गया था, अजाने ही मेरे हाथ लदङ्गी की बाहों पर रेंग रहे थे, मैंने कहा—

"मेरी बात सुनी तमने ?"

लवङ्गी मेरी बाहों से लिपटी न जाने हृदय की किन गह-

राइयों में डूब रही थी आँखें बन्द किये हुये अतीन्द्रिय जगत का

सुप्त कल्पनाओं को जगाती हुई सी वह चौंकती हुई सी बोली—

"मैं नहीं जानती सिन्तू। तू क्या कह रहा है? बस जो तू बोलता है, अच्छा लगता है मैं तो तुझ पर न्योछावर हूं। तू चाहे जो कुछ करियो पर रहियो साथ खो न जाइयो।"

मेरी दृष्टि झरने के उस छोर पर जाकर टिक गई जहाँ वह उथले चट्टान तल पर बहता हुआ एकाएक बहुत ऊँचाई से बहुत गहराई पर गिर कर सूर्य की सतरङ्गी किरणों में हीरे मोतियों की लड़ियाँ चमकाता हुआ कलकल झरझर कर रहा था। अनेकानेक वृक्ष अपने सुमधुर फलों की भेंट लिये प्यार से उसे घेरे खड़े थे। वृक्षों से लिपटी तन्वङ्गी लताएँ हरी हरी रंग विरङ्गी फूल बूटों की चुनरिया ओढ़कर उस गम्भीर वृत्ताकार गर्त्त पर पुष्पाहार चढ़ा चढ़ाकर कोई अद्भुत पर्व मना रही थी। कहीं श्यामा कूकी कविकल कुल-सा गा उठा। मेरी हृदय वीण पर आत्मा का स्वर गूँज उठा, नया सगीत ध्वनित हो उठा, प्रसन्नता के आवेश में मैंने लवङ्गी को झकझोर का चक्कर दे दिया। मैंने कहा—

"लवङ्गी सुन एक कहानी, बड़ी दिलचस्प है, सुनेगी क्या? लवङ्गी दोनों हाथ की हथेलियों ठोडी थमाकर विशाल नेत्रों को गोल गोल बनाते हुये कोहनियों को मुड़े घुटनों पर रखकर बैठ गई—

"सुना।"

"तूम्बी की बात है?"

"अरे सुनायेगा भी कुछ......?"

"तो सुन......।"

"हाँ .....?"

"तूम्बी.......।"

"कहता क्यों नहीं रुक क्यों गया।"

"तुम्बी ......।"

"हाँ हाँ ?"

"तुम्बी को भी कोई प्यार करता है।

"कौन, कौन ? बोल बोल ।" दम सा साध कर बोली, उसकी वांछे खिल गई थी।

"दिडाङ्ग ... ।"

"अच्छा ....।" एक साँस छोड़ते हुये छाहने दे, बहुत ठीक बहुत बढ़िया रहेगा।"

"कहानी तो रह ही गई ।"

"कह देना देर क्यों करता है मुझे कबीले का भी काम देखना है, जल्दी कर ।"

"जब कबीले के आदमियों के सो जाने पर मैं और तू सब कुछ भूल जाने की कोशिश कर रहे थे तो मेरी बाहों में ही धीरे-धीरे तुम गहरी नींद में सोगई। जानता था कि भारी परिश्रम के कारण तुम थक गई हो पर मुझे अपना वचन याद था जो मैंने आदिवासियों को दिया था। जहाँ हम बैठे थे वहीं से दिडाँग दिखलाई पड़ रहा था, वह सो रहा था। मैं बहुत पहिले से देख रहा था कि कबीले की एक युवती दिडाँग को बार-बार घूरती है, उस समय ज्यादा ध्यान नहीं दिया। जब आदिवासी कुटिया के पास सोने लगे तो वही युवती सबसे अलग हटकर दिडाँग के पिंजरे की ओर सरक के निकट ही जा बैठी थी। एक बार जब तुमको बाहों में भरता हुआ मैं चौंका था तो उस स्त्री को मैंने पलटते सरकते देखा था। मैं सजग था, तुमसे बातें करता-करता, कुटिया के पीछे आ गया था। तुम नींद में इठला रही थी और मेरी नजर दिडाँग के पींजरे पर पड़ी--वही स्त्री वहीं खड़ी दिडाँग से बातें कर रही थी, दिडाँग बेचैन मछली सा तड़प रहा था इस स्त्री के पींजरे के अन्दर दिये हुये हाथों को चूम रहा

था । प्रकृति के इस स्वाभाविक प्रवाह में बहते हुये दोनों को देखकर मैं लजा गया । और अखण्ड विश्वास की नींद से भरे तुम्हारे मुख में खो गया । तभी दिडांग की आवाज ने चौंका दिया ''' बाकी सब तुम जानती ही हो ?''

लवङ्गी विशेष ध्यान नहीं दे रही थी, उसने कहा—

"कुछ नहीं, ऐसा तो हमारे कबीले में होता ही रहता है। न जाने यहाँ कितनी है जो दिडांग पर जान देती हैं न जाने कितने तेरे जैसे हैं जो मुझ पर और तूम्बी पर जान देते हैं ''' पर नहीं तू तो अनोखा ही है और उस अनोखे पन ने मेरा सब कुछ बदल दिया है । कल तक जो मुझ पर भूखे भेड़ियों से मंडराया करते थे आज गीदड़ों की तरह दुम दबाकर बैठते हैं । सब बातों के पीछे तू ही है, तू मेरा आधार बना, मेरा रक्षक बना, मैं समझ गई कि एक औरत को सबसे पहले इसी की एक जरूरत है । मेरी एक बात सुन सितकेत ''' ?"

"क्यू" नहीं, क्या सुन नहीं रहा हूं ?" लवङ्गी में मुझे सभ्यता के अकुर फूटते दिखलाई पड़े, आज शायद भाषण के मूड में थी उसने कहा —

"सितकेत । जब छोटी थी तब से ही देखती आ रही हूं । कबीले में क्या-क्या हुआ; इन पुरुषों ने क्या नहीं किया औरतों के लिए, एक आग बचपन से जल रही है मेरे सीने में । मेरी माँ के पेट में बच्चा था, पर दिडांग की तरह के एक खूंखार आदमी ने अपने पशु की भूख में मेरी माँ को नोच-नोच कर मार डाला । जाने कितनों को मैंने इसी आग में जलते देखा है. पुरुषों को लड़लड़कर मरते देखा है औरतों के लिये मंडराते देखा है । पेट में बच्चा छिपाये बेबस, भूख में तड़पते, प्यास से तरसते औरतों को बुरी हालत में देखा, ऐसी हालत में उन्हीं पुरुषों को नफरत दिखाते, दूर भागते देखा; दूसरी औरतों के पीछे । और त

हिंसक जानवरों के बीच अकेली पड़ी हुई रह जाती थी। बहुतों को अपने हाथों उठाकर गुफ़ा में लाई थी. बहुतों की चीखें मुझे आज भी सुनाई पड़ रही हैं मैंने बहुतों के दुःख दर्द देखें हैं, मैं चाहती हूँ कि मैं इनके लिये कुछ करूँ ।"

अब लवङ्गी की प्रतिभा पर मुझे आश्चर्य नहीं होता था, समझता हूँ आवश्यकता आविष्कार को जन्म देने से पहले विचारों और भावनाओं का तूफान उठाती है उन्हें शब्द मिल जाते हैं तो भाषा का स्रोत बह निकलता है। लवङ्गी जो कुछ भी कह रही थी वर्सों की पीड़ा और समय की आवश्यकता कराह रही थी। मैंने कहा—

"लवङ्गी जो चाही सो करो मैं तुम्हारे साथ हूं···।'

"सच, क्या तू मुझे रास्ता दिखाएगा ?"

मैंने कहा "अब भी क्या मेरी बातें झूठी लगती है तुम्हें ?"

"ना··ना·ना तू और झूठ, तू ही तो मेरा आधार है सितकेत। वह बोली ' मितकेत पुरुषों से मैं सदा बचती रही, पर चट्टान पर तुझे देखकर मुझ पर भी कबीले का रग नशा बन कर चढ़ बैठा। मैं तुझ से बँधी रह गई। पहले तो तुझसे ठिठाली करके भटकाना ही चाहती थी और एक एक हिंसक खेल खलना चाहती थी, पर अब तू हिंसक पशु सा मुझ पर नहीं झपटा, मुझे ही तुझे झकझोरना पड़ा। मैंने हिंसक खेल का विचार छोड़ दिया। सोचा पुरुष तो तू भी था पर तुझमे एक कितनी थी ? यही अनोखापन तो मुझे ले बैठा। मुझे लगा सच्चा पुरुष तू ही है और कबीले के दूसरे तो ऐसे ही जैसे चार पैरों वाले। मैंने तुझ पर अपना सब कुछ वार दिया।'

लवङ्गी के मस्तक को चूम कर मैंने कहा—

"अब तो तू है और मैं हूँ, दोनों जुड़े केले की तरह, अलग होने का सवाल ही नहीं।

"पर मैं तो सबको अपनी खुशी में मिलाना चाहती हूं।" लवङ्गी के कहने पर मैंने जानबूझ कर पूछा —

"कैसे ?"

"जैसे तू मुझे मिला है ऐसे एक एक सबको मिल जाय, जैसे तू मेरा रक्षक है ऐसा सबका एक एक हो ? जैसे तू मेरी सेवा करता है ऐसा सबको एक एक मिल जाये।' जिसमें मेरा मुझसे कभी कोई छीन न पाये।" लवङ्गी के भावावेश को बीच में ही तोड़ते हुए मैंने कहा—

'तो इसका मतलब है स्त्रियों को एक-एक सेवक मिले और स्त्रियाँ सरदार हो जायें।" मुझे हंसता देख लवङ्गी तिलमिला पड़ी —

"क्या मैं तुझे सेवक समझती हूं और खुद को सरदार, यूं क्यूं जलाता है रे, तू मुझे ......। बुरा न मान, मैं सेवक नहीं सबके लिये अलग- २ सरदार चाहती हूं ?" मैंने विनोद किया—

"अच्छा सरदार जी ''' आने दो कबीले वालों को सुना देना अपना हुक्म तुम......मैं तो सेवक ही रहूंगा, सरदार का।" लवङ्गी ने अब की बार मेरे बालों को पकड़ कर सिर को झटका दिया, मैंने कोई प्रतिकार नहीं किया। वह अचानक लजा उठी, उसने कहा —

"जा सो जा तू ''सारी रात जागा है, कबीले वाले आयेंगे तेरा सपना पूरा होगा।" मुझे विचार आया कहां मैं यह सपना तो नहीं देख रहा हूं पर नींद की खुमारी ने दृश्य का दूसरा पर्दा उठा दिया।

सुप्तावस्था में हम कुछ स्वप्न देखते हैं और स्वप्नों में विचित्र दृश्यावलियाँ, जिनमें जाने अनजाने विचित्र चित्र घूमते रहते हैं। चाहे इस [illegible] की [illegible] कहें और [illegible] की [illegible], पर जो भी कुछ दिखलाई पड़ता है वह अनोखा ही होता है, उसका

प्रभाव भी अनोखा ही होता है। स्वप्न में भी जागते हैं और नींद लेते हैं। जब तक मस्तिष्क में जाग्रत अवस्था के लक्षण रहते हैं अथवा मन में आकुलता और उत्पीड़न, तब तक चित्रों की सृष्टि होती रहती है, जब मस्तिष्क पूरी तरह थक जाता है, नसों के कसाव ढीले हो जाते हैं तो हमारी नींद गहरी हो जाती है, शायद जिसे खर्राटों की नींद कहते हैं, पर मन तो तब भी कोई नाटक रच लेता है. यूं तो यह जगत भी सपना ही है।

लवङ्गी ने कहा तू सोजा " और स्वप्न में ही मैं सो गया, जो दृश्य मैं देख रहा था, उसमें लवङ्गी के प्रति उत्पन्न सहज आकर्षण ने आकुलता को बनाये रखा और लीला बिहारी अवचेतन ने फिर अपने जाल बुनने शुरु कर दिए—

मैंने अनुभव किया जैसे बालों में लगातार कोई उंगलियाँ घुमाता जा रहा हो, मेरे अङ्गों को धीरे-धीरे सहला रहा हो। लवङ्गी के अतिरिक्त मेरे जीवन में और कोई हो ही नहीं सकता; वही मनुहार कर रही होगी. मैं आँख बन्द किये-किये आनन्द लेने लगा, कुछ न बोला सोचने लगा, ये उँगलियाँ यूँही घूमाती रहे केशों में। मेरे होठों पर मुस्कराहट खेलती रही जिसे दबाना चाहकर में गम्भीरता का अभिनय कर रहा था। किन्तु यह क्रीड़ा यहीं समाप्त नहीं हुई सम्भवत; उसने मेरे नाटक को भाँप कर मन में फूटते लडडुओं का समुचित अनुमान लगा लिया था। मेरे लिए वे उँगलियाँ अमृत की पिचकारियां बन रही थी। एक एक नस आनन्द से फूलती जा रही थी, रोम-रोम से लवङ्गी शब्द फूट पड़ने को व्याकुल था। रात्रि का वह दृश्य मुझे याद आया जब दिडांग तूम्बी की उँगलियों को बैचेनी से चूम रहा था, यह तो प्रकृत प्रेम की अभिव्यक्ति थी उस समय दिडांक की इस चेष्टा को देखकर मैं हंसा था क्योंकि मनुष्य अपनी बुद्धिमत्ता के गर्व में दूसरों को सहज ही मूर्ख समझ लेता हैं किन्तु बलात्

आकृष्ट करने वाली प्रकृति की माया में जब फँसता है तो बुद्धि चकरा उठती है। हमारे सुप्त प्रकृत संस्कार जब जाग्रत होते हैं तो मन वही खेल खेला करता है जो प्रकृत पुरुष। लवङ्गी की पतली २ उँगलियों की कल्पना मेरे हाथों को अपनी ओर खींच रही थी, मन व्याकुल हो उठा, उन्हें चूमने के लिये। मैंने धीरे हाथ ऊपर ले जाकर उन उँगलियों को पकड़ लिया लेकिन उठकर घूमते ही चौंक पड़ा। मैंने कहा—

"तुम...... ?"

"उसने केवल श्यामघन में चपला की भाँति चमकते हुए सफेद सफेद दाँतों को दिखाकर हँस दिया। लगा मुझे खिजाया जा रहा है, सारा प्रेम हवा हो गया, मन वितृष्णा से भर उठा, मैं चिल्ला पड़ा—

"तूम्बी ......तू यहाँ क्यों आई ?"

वह बहुत घबरा गई, जैसे पहाड़ की चोटी पर ले जाकर किसी को अचानक नीचे धकेल दिया गया हो। जीभ तो व्यर्थ ही शब्दों की सभायें रचरचकर बातों को घुमाया करती है पर चेहरे पर आये हुये भाव और नेत्र-दृष्टि सारे भेद सहज ही खोल देती है। न तूम्बी को मुझे पहिचानने में देर लगी और न मुझे तूम्बी को। मैंने अनुभव किया कि तूम्बी के मन में कोई भयंकर अन्धड़ उठ गया है उसने मेरे कठोर स्वर में मेरी घृणा को ताड़ लिया, एक साथ उसके नेत्रों में दैन्य, उदासीनता, विरक्ति, विवशता और क्षोभ के दर्शन होने लगे, जबाड़े में किंचित कसाव आगया और नथने फड़कने लगे थे। वह एक दम वहाँ से हटकर चल दी। वह लंगड़ाती हुयी जा रही थी। सोचने लगा, "प्रेम क्या है ? क्या केवल अनुभूति और कल्पना का समन्वय ? जब उँगलियाँ बालों में थी तो कितना मस्त था मैं ? फिर वे ही उँगलियाँ बिच्छुओं के डंक में बदल गई। कितना उदारमना था

मैं ? कितना विशाल हृदय था ?? कितना क्षमाशील था मैं???
मन के किसी कोने में बैठे हुये किसी भाव ने आवाज दी, वाह
रे सन्त ! वाहरे महात्मा !! खूब ढोंग करते हो । दिडांग से
मुकाबला आ पड़ा तो क्षमा का ढोंग रचा दिया और अब एक
अबला को सामने पाकर पौरुष की अग्नि दहक उठी । लवङ्गी के
रूप माधुर्य को देख प्रेम का ज्वार उठने लगा, उदात्त मन हो
गया, हृदय में सम्पूर्ण जगती का प्रेम जाग उठा और मन के
विपरीत एक सप्राण ईश्वरीय अंश को पाकर हृदय के रेगीस्तान
में मिट्टी और कंकड़ भरे रेतीले अन्धड़ उठने लगे। एक ही पर-
मात्मा की सृष्टि का एक जीव प्रेम की मूर्ति बन गया और
दूसरा घृणा का पिंड । किस बात में हम प्रकृत प्रेमियों से कम
है ? मैंने दिडांग से स्वयं की तुलना की । दिडांग भी लवङ्गी के
पीछे दौड़ा और मैं भी । लवङ्गी कहती थी—दिडांग ने उसके लिये
न जाने कितनों की बलि दी और मैंने भी लवङ्गी के लिये दिडांग
के भाई को मार दिया; इतना ही दूसरों के लिए भी शस्त्र उठा-
कर खड़ा हो गया था ।

मैं मन ही मन स्वयं को उत्तरदायित्व पूर्ण मान सकता हूं,
अनजान स्त्री तूम्बी के लिए जान की बाजी लगाने वाला वीर
कहकर फूल सकता हूँ किन्तु यदि दिडांग न चिल्लाया होता तो
क्या मैं शेर के बारे में जान भी सकता था ? दिडांग भी तो
उसको बचाने के लिए उछला था, कूदा था, चिल्लाया था ।

जहाँ तक स्वस्थ, सुदृढ़ और शक्तिशाली अङ्ग होने का प्रश्न
था वह मुझसे कहीं अधिक दिडाग में था, एक रङ्ग ही तो कुछ
अच्छा था पर शायद अन्दर से इस समय मैं उतना ही काला
भी था ।

ग्लानि के प्रादुर्भाव से मन उद्वेलित हो उठा, क्या लवङ्गी

मेरी झूठी प्रशंसा करती है ? किस बात में अनोखा कहती है

यह मुझे ? क्या इस लिये कि मुझे सुन्दर और स्वादिष्ट का उपभोग करना आता है ? सुख में फूल सकता हूं और दुःख में तड़प उठता हूं और जगत का शेष ठुकराकर कायरों की भांति उससे दूर भागने लगता हूं ? तूम्बी क्या कोई जीव नहीं, नारी नहीं। उसमें भी एक हृदय है जिसमें भावना भी है।

जीवन की उमङ्गों में धरती के ऊपर उसका भी कुछ भाग है धरती की वस्तुओं का उपभोग करने का उसे भी अधिकार है क्या मैं उसके अधिकार में वाधक बनकर अपने सृष्टा का उपहास नहीं कर रहा हूं ? क्या सात्विक गुणों को विवशता की कसोटी पर नहीं कस रहा हूं ? जीवन की अनुभूतियों से खिलवाड़ करता हुआ क्या मैं स्वार्थ की निम्न भूमि पर नहीं उतर रहा हूं ? क्या हो, अगर जगत के इन निरीह प्राणियों में हम थोड़ी थोड़ी अपनी मुस्कान बांट दें। अपने सपनों के फूलों की सुगन्ध इन तक भी पहुंचा दें, करुणा वेल पर चमकती हुई आशाओं की कलियां उनके मन में भी खिला दें ?

मेरे अन्दर का प्रबोधक पुरुष धिक्कारता हुआ मुझे तूम्बी के पीछे धकेलने लगा। एक तो वह रोगिणी है फिर कैसे पैर को घसीटती हुई जा रही है।" मैं द्रवित हो गया देखा ऊंचे खतरनाक ढलान पर सरक-सरक कर चढ़ती जा रही है वह लगता था तूम्बी को तन से अधिक मन में कहीं गहरा घाव लगा था। इस समय न उसे तन की परवाह थी, न गिरने और लुढकने का भय, मैंने जोर से पुकार की—

"तूम्बी ऽ ऽ ऽ रुक जा ऽ ऽ ऽ तूम्बी ऽ ऽ ऽ रुक जा ऽ ऽ।"

सारी घाटी गूंज उठी "तूम्बी (तू भी) रुक जा।" और पिंजड़े में बन्द दिडांग ठहाका मार कर हंस पड़ा, "

आ ऽ ऽ हा, हाऽ ऽ ऽ हा हा ऽ ऽ तू ही रुक ऽऽ जा।"

मुझे लगा प्रकृति मुझे बलपूर्वक आगे की ओर खींच रही

थी और समय दहाड़ दहाड़ कर उपहास कर रहा था। मन अनहोनी की आशंका से काँप उठा, एक क्षण के लिए मैं ठिठका, पर प्रबोधक पुरुष ने फिर धक्का दिया मैं चिल्ला पड़ा—"तूम्बी रुक जाऽऽऽ।" उसके पीछे ढलान पर दौड़ने लगा, वह पीछे मुड़कर देखें बिना आगे ही सरकती जा रही थी, दिडांग अपने अट्टहास से घाटी को गुंजा रहा था, मेरा साँस फूलता जा रहा था, फिर भी हाँफता काँपता ऊपर चढ़ रहा था। एकाएक झरने के भडभडाते किनारे से सरक कर तूम्बी गहरे गर्त्त में ही जा पड़ती यदि मैंने एक छलाँग में ही उसने थाम लिया होता। उसे मैंने बाहों में उछाल लिया किन्तु नीचे लवङ्गी की पुकार सुनते ही मैं होश खो बैठा। पैर फिसला और सन्तुलन बिगड़ गया। नीचे की ओर लुढ़कने लगा, तूम्बी बच गई पर मेरा बदन झाड़ियां और कंकड़ों की खचोठों से भर गया

चोट का ध्यान किये बिना मैं लजाता हुआ उठने का प्रयत्न कर रहा था, तूम्बी सकपका कर भी इठला रही थी, लवङ्गी जबरदस्ती जबडे भींचकर आवेग दबाने का असफल प्रयत्न कर रही थी और दिडांग पागलों की भाँति "गिरं··गिरं···" ध्वनि करता हुआ-सा उपहास कर रहा था। सम्भवतः हम सबके सामने उस समय एक ही सवाल था, "तूम्बी को मैंने बाँहों में क्यों उठाया ?" अधिक देर हम एक दूसरे से आँख नहीं मिला सके, एक दूसरे से कुछ कहे बिना अलग-अलग रास्तों पर बढ़ गये। अपने विचारों में मैं फिर अकेला था।

कबीर की माया– ठगिनी, आदमी को कैसे त्रिगुण के फाँस में भटकाती है। आज कुछ समझ में आया। लवङ्गी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर रजोगुणी पाश में फंसा, समय दिडांग की भाँति खिल खिलाता हुआ लवङ्गी को हमसे छीनने लगा, अभिमान में भरकर दिडांग के भाई की हत्या हमने की और तमोगुणी

जाल हम पर आ गिरा, वीरता और करुणा की भावना से प्रेरित होकर जब तूम्बी के लिये कुछ किया तो सतोगुण ने ऐसे फाँसा कि सम्भल न सके और फिर समय की ठोकरों में आ गिरे।

एक हँस रहा था, एक रिझा रहा था एक खिजा रहा था भावनाओं के तूफान में मैं तिलमिला उठा, मन पुनः विरक्ति से भर गया, सोचने लगा "अरे किस जाल में पड़ गया तू, किस का विकास करेगा, व्यर्थ ही क्यों माया का नगर बसा रहा है। समय इन खिलौनों को तोड़कर फिर हँसेगा। बार २ किसे २ मनाने बैठेगा, किसे २ समझायेगा, किसे २ भुलायेगा ? मन ने कहा ' सब को भूल जा, चल उठ ! तेरा रास्ता अकेलेपन का है।

अपना हथियार उठाया, एक ही बार मैं हरे-भरे वृक्षों के बीच दहती हुई आग और बहते हुए झरने तथा महकते हुये गुलाबों एवं सोने की माया से चमकते हुये धान के पौधों में सम्पूर्ण आशाओं को समेटती हुई कुटिया को पींजरे में बन्द दिड़ाँग और सौन्दर्य की अनुपम प्रतिभा प्रेम की आधार शिलाल उङ्गी सबका, मोह तोड़ कर चल पड़ा और आगे बढ़ता चला गया, पीछे मुड़कर देखने का मन ही न हुआ। त्याग की आधार भूमि पर आनन्द का उद्रेक होने लगा, चिंता घुलकर समाप्त होने लगी।

अपनी धुन में मस्त चला जा रहा था पर एकाएक विचार तन्द्रा भङ्ग हो गई, पीछे से कोई ज़ोर २ से चिल्ला रहा था। वह लवङ्गी थी। मैंने निश्चयात्मक ढंग से पग बढ़ाये, ध्यान हटाने का प्रयत्न किया, किन्तु दौड़ती, टकराती, गिरती, पड़ती हाँफती-हाँफती वह मुझसे आकर लिपट गई, वह नीचे को सरक कर पैरों से लिपटती हुई गिर गई, "कहाँ जा रहा है मुझे छोड़कर......।" अधिकार और कातरता अद्भुत समन्वय के साथ

स्वरों में फूट पड़े। मैं मौन था। उसकी आँखों में झाँक कर

देखा तो सम्भाल न सका, लगा, जैसे समुद्र की बड़ी–२ लहरें किसी गहराई में खींचकर ले जा रही हों मुझे कुछ मदहोश से स्वर निकले, "नहीं बंधेगा "

वह फुस फुसाई—"मैंने तुझे कुछ कहा। बोल, बोलता क्यों नहीं ?"

मैंने कहा––"नहीं।"

उसने कहा––"मैंने तो तुझे सब कुछ सौंप दिया, सब कुछ बता दिया, मैं तुझसे अलग नहीं रह सकती फिर तू········ क्यूं ········?' बात पूरी करने से पहले ही वह सिसक पड़ी। उसका मुख विवर्ण हो गया था, पीन पयोधर भारी हो चले थे, कटिक्षीक्ष थी पर उदर फैला हुआ सा. वह पसीने से लथपथ हाँफ रही थी, काँप रही थी। शब्द बोले नहीं जुल रहे थे। सूखे २ होठों पर जीभ फिराकर बोली, "मैंने क्या सोचा था सितकेत, पर तुम भी और पुरुषों की ही तरह निकले। मेरी दशा को देख, मेरे पेट में पलते हुये खुदको देख, इसी तरह छोड़ जायेगा मुझे ! छोड़कर भी तू मुझसे दूर नहीं हो सकेगा। तू पुरुष है तो मैं भी प्रकृति हूं, कहीं न कहीं मेरी सीमायें तुझे घेर कर छोड़ेगी, बाँध कर रहेंगी ही।"

मेरा सारा दर्शन गोल हुआ जा रहा था लगा मैं अपने कर्त्तव्य को भूल पलायनवादी हो गया हूं। मैं निरुत्तर था, स्वयं पर लज्जित-सा। उसने कहा—

"नहीं बोलता ···· अच्छा जा,······· पर खुश रहना तू ····।" वह रोती, बिलखती हिचकी लेकर लौट पडी। मैं सह न सका, पुरुष के गर्वीले तार फिर झनझना उठे, बँधा बँधा-सा, खिचा खिचा सा उसके पीछे हो लिया। वह कुटिया पर आकर ठहरी, मैंने कुछ लकड़ियाँ उठाईं और आग में डाल दीं,

बुझती हुई आग फिर धधकने लगी, दिडांग अब भी जाग रहा था और पागलों की तरह खीसे निपोर रहा था।

वन में कबीले के सङ्ग रहते २ मुझे कितने दिन बीत गये थे, मैंने कई योजनाबद्ध कार्य पूर्ण किये, एक नये समाज का गठन कर अपनी योग्यता के अनुसार कबीले के व्यक्तियों को भिन्न भिन्न अभ्यास कराये, जीवन निरन्तर नवनिर्माण की ओर बढ़ने लगा। अपनी कुटिया के अनुकरण पर मैंने अग्नि के चारों ओर गोलाकार रूप में अनेक झोपड़े खड़े करवाये, जिनमें जंगल के फल फूल, शिकार किये हुये जानवरों की खालें तरह-तरह के पत्थर, उनके शस्त्र सीपियों, कौडियाँ, सूखी- २ लकड़ियाँ सबको अलग- २ इकट्ठा कराया था। कुछ शक्तिशाली आदिवासियों को इनकी रक्षा के लिए नियुक्त किया था, ये बलशाली तो थे ही, मुझे और लवङ्गी को समान स्नेह भी करते थे, कर्त्तव्य निष्ठा से समुदाय रक्षा का उत्तरदायित्व बहकर रहे थे। हमारे द्वारा 'आहुति' कहकर पुकारे जाने वाली प्रज्वलित अग्नि की रक्षा का भार भी इन पर आ पड़ा था। अग्नि के चारों ओर जब सम्पूर्ण कबीला इकट्ठा होकर बैठता तो इसे ब्रह्म या समाज कहकर पुकारा जाता।

मेरे साथ अनेक व्यक्ति नित्य प्रातः मध्याह्न और संध्या-काल में अग्नि में लकड़ियाँ डाला करते और पालतू जानवरों का दुग्धादि खाने से पूर्व अपने इस देवता को समर्पित करने के लिये अग्नि में डाला करते थे। कोई व्यक्ति अत्यधिक प्रेम और श्रद्धा से मेरा साथ दिया करते, अग्नि चमक, ताप और ऊष्मा तथा प्रज्वलित ज्वालाओं की ध्वसंकारिणी शक्ति को लेकर कुछ गीत रच डाले थे हमने उसी प्रकार कुछ गीतों को प्रातः कालीन सूर्य और आकाश की लाली को लेकर भी बनाया था।

प्रातःकाल अग्नि प्रज्वलित करते-करते सूर्य निकल आता,

प्रकाश फैल जाता, सब कुछ दीखने लगता, सारा समाज आनन्द से भर जाता। आदिवासी फल फूल तोड़कर लाते। हमें लगता अग्नि हमारा जीवन है, वह हमें आत्मीय से प्रतीत होती जो कुछ भी खाते उसमें से पहले कुछ अग्नि में डालकर सन्तुष्ट होते; लगता यह देवता इसे खाकर प्रसन्न होगा। धीरे-धीरे यह प्यार अधिक मात्रा में बढ़ गया। कबीले के पहले आदमी छीन झपटकर खाते थे अब सब व्यक्ति उस समय की प्रतीक्षा करते रहते जब सब इकट्ठा होकर अग्नि के चारों ओर बैठकर बाँट बाँट कर खाये। यह सम्मेलन विशेष आनन्ददायी था। कुछ आदिवासी कुछ फलों का रस दोनों में भर भर कर, पी पीकर झूमने लगते थे उन पर कभी कभी तो ऐसी मस्ती आती कि भोजनोपरान्त हँसते, खेलते, गाते, नाचते एक दूसरे का हाथ पकड़ गोलाकार रूप में अग्नि के चारों ओर थम-थम और थम-थम करने लगते।

कबीले के एक आदमी ने एक दिन एक खोखले पत्थर पर पतली खाल को इस तरह मँढ़ दिया था कि उससे सुन्दर आवाज़ निकलने लगी। वह ऐसे समय इसे ही बजाया करता। किसी आदिवासी ने बाँस की छोटी सी नली में कुछ छेद कर उँगलियों के प्रयोग और मुँह की हवा के द्वारा ऐसी सुन्दर आवाज़ निकालना शुरू किया था कि इस आनन्द में चार चाँद लग जाते, सब उसे बीच में लेकर नाचते, स्त्रियाँ और बच्चे उसकी धुन पर झुक झुक कर मंड़राते। झोंपड़ों के बीचों बीच मेरे निर्देशन पर लवङ्गी के लिये विचित्र प्रकार के आवास का निर्माण पास खड़े हुये वृक्ष की झुकी हुई डाल पर मोटे लट्ठों और बाँसों का सहारा लेकर किया गया था, जिसमें ऊपर चढ़ने के लिये विचित्र सीढ़ी थी। अब तक आदिवासी उस आवास के आँगन में रक्षकों से

घिरकर सोते हुये रातें बिताते थे और लवङ्गी आवास में।

उसकी कुटिया प्रतिदिन फूलों से सजायी जाती जहाँ वह स्वयं भी फूलों से सजी हुयी मेरी कुटिया को निहारती रहती थी।

सभ्यता के विचित्र सोपान पर तो आज के मानव की भाँति हमने भी बाहरी रूप से पर्याप्त प्रगति की थी पर आन्तरिक रूप से कुछ आगे नहीं आये, शायद कुछ पिछड़ ही गये थे। शक्ति और प्रेरणा का आधार लवङ्गी भी शरीर से स्थूल काय एवं परावलम्बी सी होने लगी थी। लगता था स्वावलम्बन से परावलम्बन की ओर बढ़ते पग हमें निश्चय बुद्धि बल पर विश्वास करने पर विवश करेंगे पर यही हमें चालबाज़ बनाकर छली बनाने में भी कोर कसर न छोड़ेंगे। निश्चय ही कुछ भार देने वाले होंगे तो कुछ विवश होकर भार ढोने वाले, कुछ स्वामी तो कुछ सेवक, कुछ आश्रय दाता और कुछ आश्रित, कुछ बड़े और कुछ छोटे। भेद की दीवारें खड़ी होने लगेंगी।

जीवन के सम्पूर्ण विकास पर विचार करते हुये मैं लवङ्गी के आवास की ओर देख रहा था, मुझे लवङ्गी की हँसी सुनाई पड़ी, चकित होकर मैंने चारों ओर देखा, मैं आहट लेता हुआ आवाज़ की ओर बढ़ा, कुछ दूर चलने पर बड़े वृक्ष की छाया में झुरमुट की ओट लवङ्गी को एक दूसरे की गल बहियाँ डाल हँसते मुस्कराते देखा, कहकहे पर कह कहा लग रहा था, मेरी आँखें अचम्भे से फटी जा रही थी।

उनके पीछे पहुंचकर चट्ठान की ओट से उनकी बातें सुनने लगा, लगता था वार्त्ता अब उपसंहार पर थी जिसका अन्त सुख पूर्ण ही था। दोनों के प्रेमालाप से नदी के दो किनारे मिलकर एक होते हुये दूर आसमान के सीने में घूसते जान पड़े। सीने पर हाथ रख कर मैंने देखा, घड़कनों ने धमाचोकड़ी मचा रखी थी, हंसू, रोऊं, क्रोधकरूं या प्रसन्नता से चीख पड़ूं? मैं कुछ

समझ नहीं पा रहा था। हक्का बक्का मुंह बाये उनकी बातें

सुनने लगी—

लवङ्गी बोली—"तो बात पक्की ?"

वह आँखें नचाकर बोली "क्यों नहीं, सरदार का हुक्म सिर आँखों पै।

लवङ्गी ने उसके बाल पकड़कर झिंझोड़ दिये और तूम्बी प्यार भरी चीख मार कर रह गई। लवङ्गी ने कहा—

"बोल फिर भी बोलेगी ऐसा ?"

"नहीं, नहीं...बोलूंगी...मेरे बाल तो छोड़ो...।" फिर कुछ देर रुक कर, दूर छिटकर शरारतों हंसी में फुसफुसाया— ..."पर वह तो बोलता है ?"

"कौन ?" लवङ्गी ने जानबूझ कर पूछा।

"है कोई ?" तूम्बी ने आँख नचाकर कहा -

"बताना ?" लवङ्गी ने प्रेम भरा आग्रह किया।

"नहीं बताते......है कोई......।" तूम्बी फिर इठलाई। "हमारा प्यार है, नाम सुनोगी तो जल उठोगी।

"मैं क्यों जलूं......अब तुझे न देने को मेरे पास क्या है।"

"तो बता दूं ?"

"हाँ, बता दें।"

"वह है मेरे सरदार का सरदार—सितकेत।"

"धत्......।" शरमा कर तूम्बी के गाल पर हल्की चपत जड़ते ही खंजन की भाँति पलकों के पर झपकाकर लवङ्गी के नेत्र झुक गये थे, खून की लाली कानों के पास छिटकर पड़ी थी, मूंगे की रेखा के समान ओठो पर मन का भार छुप छुप आँख मिचौनी खेलता हुआ मुस्कराहट बनकर फूट पड़ा। हीरों जड़ी बत्तीसी से सैकड़ों किरणें फूटने लगी ? जी भर कर तूम्बी को भी मैंने आज ही देखा—रंग साँवला हुआ तो क्या ? लगा शरीर का प्रत्येक अंग मानों गुलाल की झपकी देकर दीपक की लौ से

प्रतिविम्बित करके सलेटी संग मरमर में ढाला गया हो। पीन-कदली स्तम्भ के समान चिकनी सुपुष्ट जघाएँ, केहरी सदृश्य क्षीण कटि, गोल श्रीफलों की भाँति सुडौल पयोधरों पर आच्छादित मेघचर्म, कपोती की भाँति सुन्दर ग्रीवा, नील कमल पर सुरभित सुवासित पराग तुल्य सुन्दर विम्ब की लाली भरे ओष्ठ, शुक सी नुकीली लम्बी पैनी नासिका और बादलों में चमकती बिजली के समान सफेद विशाल कानों तक फैले नेत्र। मुख पर काले-काले घुँघराले बालों की लटें, झूम झूम कर माथे को चूम लहरा रही थी, स्वास्थ्य ने तो मानों उसमें सौन्दर्य के मोह से अंगों को आश्रय स्थल बना लिया था, मानो वह कुन्तला उसी के नशे में खड़ी ईठला रही थी।

लवङ्गी के मिलन ने पास स्पर्श से उसे कंचन का रूप दे दिया था, मेरा अंग अंग रोमाँचित हो उठा जैसे जीवन लौट आया हो, जीवन की आशा बलवती हो चली। योजनाएँ साकार सी होने लगी इतने जोर से हँसने की इच्छा हुई कि सीने का दर्द उखड़ जाये और गम के बादल फट जायें।

पर हाय यह क्या ? तूम्बी की बड़ी–बड़ी आँखों से कपोल की ओर सरकते मोटे मोटे दो आँसू जैसे हृदय की सम्पूर्ण प्रेम पूँजी को बटोर कर चोरों की तरह कोनों के द्वार से भाग चले हो और किसी को सामने पाकर शरमाते हुये ठिठकर खड़े हो गये हो। मैं अजीब स्थिति में था। उससे पहले की मैं पुनः विचारों की दलदल में फंसू लवङ्गी मुझे देखकर चौंक पड़ी, उसने तुम्बी से कहा—"...जा सजाले अपने को......और चल दी। रहस्य अधिक रहस्य पूर्ण हो गया।

लवङ्गी के आदेश पर निश्चय ही आज किसी विशेष पर्व का आयोजन था क्योंकि बस्ति के सब मार्ग पत्तों से ढेर लगाये जा रहे थे। झोपड़ों को फूल और पत्तों से सजाया गया था,

कुटिया के सामने बड़े-बड़े पत्थरों को जोड़कर कोई चौकी बनाई गई थी जिस पर मृतसिंह की स-मुख ख़ाल को बिछाया गया था।

अग्नि में आज सुगन्धित चन्दन की लकड़ियां डाली गई थी। पानी के साथ घिस घिस कर चन्दन की लकड़ी के लेप अंगों पर किये गये थे। चन्दन चर्चित आदिवासियों के बदन फूलों से सजे हुये थे। बांसुरी वाला, चमड़े के वाद्य वाला और सभी स्त्री आकर इकट्ठे होने लगे। लवङ्गी अपने आवास से बाहर आई हर्षोल्लास के साथ जय जयकार हुआ, बाजे बजने लगे। सीढ़ियों से उतर कर वह पत्थर की चौकी पर आ शेर की खाल के ऊपर खड़ी हो गई।

मेरे द्वारा बनाया हुआ उसका मोर चन्दों का मुकुट उसकी कुंचित केश राशि के ऊपर शिर को शोभा मण्डित कर रहा था उन्नत वक्षस्थल पर कौडियों, मूंगा और तरह तरह के चमकते पत्थरों की माला वन पुष्पों के साथ मिलकर शरीर को आभूषित कर रही थी। सफेद भेड़ की खाल बाँए कन्धे पर होती हुई श्वेत स्फटिक सी चिकनी जंघाओं पर झूल रही थी। हाथों और पैरों में फूलों के गजरे सजे हुये थे, सुगन्धित चन्दन से आभूषित मस्तक के नीचे नील कमल से दो नेत्र आज किसी दैवीय आलोक से आलोकित जान पड़े। लवङ्गी एक हाथ में शक्ति का प्रतीक दिडाँग का विकराल अस्त्र लिए जब शेर की खाल पर बैठी तो लगा सिंह पर चढ़ी त्रिलोक पूजित कोई सुन्दरी दया [illegible] शक्ति के साथ जगत नियन्त्रण के लिये अवतरित हो [illegible] भावुकता से गद्‌गद प्रणत हो अन्य आदिवासियों के [illegible] झुक गया। एक-एक क्षण एक-एक पग पर मैं उसके साथ [illegible] हा था वह जिसे मैं भूल से पराजित समझ बैठा न जाने आज वह कौन

सा आत्म· तेज समेट लाई थी। सेरा मन उसे आज [illegible]: स्वयं

सिधा कहने पर विवश हो गया। लवङ्गी के हस्त संकेत पर पूर्ण मौन छा गया उसने एक बार अपने दिव्य चक्षुओं से सब पर दृष्टिपात करते हुये दिडाँग की ओर देखा। आज वह भी सजा हुआ था--लवङ्गी ने मुझे आदेश दिया।

"यहाँ आओ, सितकेत! यन्त्रवत उधर चला गया उसके दूसरे आदेश पर मदभ्राती गजगासिनी सी तूम्बी दूसरी ओर आकर खड़ी हो गई। आज तूम्ब, तूम्बी नहीं थी साँवले रूप की देव नेतिभा लग रही थी। सब आश्चर्य चकित थे। किसी को पता नहीं था कि क्या होने वाला है?

आसमान में बादल घुमने लगे थे, पवन सुवासित होकर बह रहा था, अग्नि ज्वाला देव बालाओं सी नाच रहीं थी, लवङ्गी के नेत्र से किसी अाद्रितीय तेज से चमक रहे थे। आसमान में विजली कड़की. सब काँप उठे। मेरा हृदय धड़कने लगा, कहीं वर्षा शुरू न हो जाय और मेरी जलाई हुई अग्नि तेजहीन होकर -बुझ न जाय। लवङ्गी ने बोलना शुरू किया।

"कबीले वाले सुन! (मैं अज्ञात भय से आशंकित था) बहुत दिन हो गये, हम बहुत कुछ बदल गये, हमारा जीवन बदजा है, रहन सहन बदला है। अन्धेरी गुफाओं को छोड़ धधकती ज्वाला के प्रकाश में रहने लगे हैं हम। हम आगे बढ़कर निडर रहकर आनन्द मना रहे हैं। कुछ बना चुके हैं, कुछ बना रहे हैं, आग जली महल झोंपड़े सजे और हमने अनगिन साथियों की मौत से जान बचायी। दुःख दर्दों की लड़ाई में हम हारे नहीं, घबराये नहीं, आज भी हंसते हैं, रोते नहीं...... और इस सब का आधार एक पुरुष है, जिसने हमें आज के हम जैसा बनाया, जिसके बिना हम हम नहीं, तुम्हारी सरदार कुछ नहीं। मेरी जिन्दगी............ लवङ्गी का गला भर भरा

उठा, जैसे भाषा का प्रवाह मार्ग भूलकर एक ही स्थान पर चक्कर काटने लगा हो या शब्दों के भाड़े भीड़ में टकरा कर मिट्टी हो गये हों अथवा भावना की आग में मोम की शब्दावली पिघल कर रह गई हो। मेरा अन्तरङ्ग सिसकने लगा—

"मैं किसी को सुख भी दे पाऊंगा या नहीं ?"

लवङ्गी ने अपने को नियंत्रित करने के प्रयत्न में तरलायित नेत्रों की आवरण पलकों को वारबार झपकाया, बड़ी मुश्किल से खंखार कर गले को साफ करने का बहाना करते हुये कहना प्रारम्भ किया—"जिसने हमारी खुशी के लिये यह सब किया, उसे हम कुछ भी नहीं दे पाये, हमें तो उसकी पूजा करनी थी "—लगा मेरे हृदय पर हथोड़ों की चोंट की जा रही हैं—" वह निरन्तर कहती रही—

"मैं बहुत दिनों से चाहती थी कि एक काम कबीले के लिये कर दूं, वह मैं करके रहूंगी।" उसके स्वर में कठोरता, संगम और शासकेत्व का समावेश होने लगा—

"कबीले में नन्हे नन्हों से लेकर बड़े बूंढों तक दो तरह के जीव हैं—एक पुरुष और दूसरा नारी। दोनों ही भरपूर कार्य करते हैं, भरपूर सेवा देते हैं कबीले को, और अब एक दूसरे के सुख दुःख को भी समझने लगे हैं, पर पीछे गया समय रहरहकर मेरे तन में कांटा सा चुभा रहता है। मैंने देखा है—दिल की किसी अनजानी भावना के जोर पर दो स्त्री पुरुष अपनी लगाई अनजानी आग में कूद पड़ते हैं, कुछ देर गर्मी का आनन्द उठाते हैं पर पुरुष नामक जीव स्त्री को भारी बोझ देकर उसे दहकती हुयी आग में जलने के लिये छोड़कर भाग जाता है और दूसरी कलियों को मसलने की लालसा में मंडराने लगता है। मैंने इन

आग में अपनी मां को जलकर दम तोड़ते देखा अनेक कलियों

का मसलते हुये देखा। अपने को बहुत बचाया पर.......... ...पर मैं उसका जिम्मेदार केवल पुरुष को नहीं ठहराती दोनों ही इसके लिये जिम्मेदार हैं, दोनों को एक दूसरे की भारी आवश्यकता है, एक दूसरे के विना एक दूसरा वेकार है।

कवीला कान खोलकर सुने, पहले कई वार स्त्री पुरुष जोड़े वनाकर नाचे हैं और आज अन्तिम दिन है कि खुशी से अच्छी तरह देखभालकर सोच समझकर जोड़े वनाये जायें क्योंकि आज के वाद एक जोड़े का स्त्री या पुरुष किसी दूसरे के जोड़े से स्त्री या पुरुष के सङ्ग इस आग में नहीं कूदेगा और नहीं छोड़कर भाग सकेगा।"

अनेकों दृष्टियाँ आज पहली वार सच्ची खोज में लग गईं। आकाश वादलों से भरता जा रहा था, गड़गड़ाहट में विजली कड़क उठती थी। मैं खुशी से झूम उठा। मैं सारा आनन्द संभाल पाने में स्वयं को असमर्थ सा अनुभव कर रहा था जिससे अनजान ही दिल घबराने लगा था। किसी अनिष्ट की अज्ञात भावना में भरा मन काँप उठता था। जोड़े अलग २ होने लगे, चेहरे खिले हुये थे। हवा के झोंके तीव्र होने लगे, यदाकदा अंगारे उड़कर दूर जा पड़ते, जो पत्थरों के बीच गिरकर बुझ जाते। लवङ्गी ने कहा—

"अब अन्तिम वात सुनें..." शब्द वाहर आने में जैसे बुरी तरह हिचकिचा रहे हों सीने का उतार चढ़ाव स्पष्टतया दीख रहा था। ओठों पर आई हुई पपड़ी को बार २ तरल करने की चेष्टा की जा रही थी। आँसुओं को छिपाने की चेष्टा में बार वार पलकों को झपकाया जा रहा था। उसने कहा—

"आज इसी खुशी के दिन, कवीले की भलाई के लिए मैं अन्तिम वार सितकेत से एक चीज माँगती हूं—मेरा आदेश है—सभी जोड़ों के सदा एक और जोड़ा बने सितकेत और तूम्बी...

का पास ही कहीं बिजली गिर पड़ी थी जिसकी कड़क से सारा जंगल काँप उठा। पींजरे में पड़ा हुआ दिडाँग शायद पागल हो उठा था, उसने पींजरे को इतने जोर से हिलाया कि मौसमी प्रभाव से पीड़ित बाँस चरमराकर टूट पड़े, हम दोनों एक साथ चिल्ला पड़े --"नहीं ऽऽऽ यह नहीं होगा।"

हवा के झोंके आँधी बन गये, आग के शोले इधर उधर बिखरने लगे, झोंपड़ों से धुंआ उठने लगा, उन्हें बचाने के लिए कोई दौड़े उससे पूर्व ही ज्वालाएँ धधकने लगी। दिडाँग चिल्लाता हुआ लवङ्गी के पास आया। मैं अनिष्ट की आशंका से काँप उठा, कहीं यह उस पर आक्रमण न कर दे। मैं आगे बढ़ा पर मेरा हथियार भी मेरे पास नहीं था। मैं उसकी तरफ बढ़ना चाहता था पर लगता था जैसे मेरे पैरों में भारी पत्थर बाँध दिये गये हों, मैं स्वयं को विवश अनुभव करने लगा, चाहकर भी कुछ कर नहीं पा रहा था। आदिवासी इधर उधर भागने लगे, वह चिल्लाया—"ऐसा न कर, भोंगी......दुनियाँ का सब कुछ तू मुझसे नहीं छीन सकती......मार देती मुझे मार...दे...से मार दे मुझे ... पर तूम्बी मेरी है .....तू मुझे जिन्दा रखकर आग में नहीं जला सकती अगर यह हुआ...तो मैं तुझ आग में झोंक दूंगा।" किकर्त्तव्यधि मूढ़ था मैं, मन तड़प रहा था......पर हाथ पैर मानों वेजान थे, हाथ पाँव उठाने कीं कोशिश करता पर जैसे पक्षाघात सा हो गया था। उसपर ......अन्तर्मन चीत्कार रहा था।

"हे प्रभु! बचा लो उसे...बचा लो मेरे बच्चे की माँ को......बचा लो—बचा लो।"

लवङ्गी के शरीर से कुछ किरणें फूटने लगी, बिजली की भाँति सारा अरण्य चमकने लगा, दिडाँग छोटे से बालक के रूप में

परिवर्तित होकर लवङ्गी के चरणों में पड़ा रोता हुआ दिखलाई पड़ा, लवङ्गी ने उसे हाथों में उठा लिया अपनी ममता भरी दृष्टि से वह उसे देखने लगी और देखते २ वह विशाल से विशालतर होकर मेघ मंडित आकाश को छूने लगी। तूम्बी खिल खिलाकर इतने जोर २ से हँसी कि सारा जंगल कड़कने लगा उसके दाँतों की ज्योति छिटक-छिटक कर सब को चकाचौंध करने लगी। वर्षा होने लगी शायद भगवान ने मेरी सुन ली थी, जंगल की आग पर वर्षा का जल पड़ रहा था, मेरा सारा शरीर भीगता जा रहा था बन्द आँखों में मुझे एक ही रट लगी थी······

"बचा लो प्रभु····· बचालो····· तुम दया निधान हो दयालु हो, मैं विवश हूँ दया का पात्र····· हूं।"

× × ×

मैं लगातार बड़बड़ा रहा था कोई झिझोड़ कर मुझे सोते से जगा रहा था। आँखें खुली तो देखा, वहीं मेरी पत्नी मेरे सामने खड़ी थी, बेचैन प्रेमाकुल और अश्रुपूरित। उसकी आँखों से बरसने वाला पानी ही मुझे भिगोए जा रहा था।

वह बहुत अधिक घबराई हुई फटी-फटी आँखों से मुझे देख रही थी, मुझे होश में आता देख उसके चेहरे पर खुशी की लहर दिखलाई पड़ी। मैंने उसका हाथ पकड़ हृदय से लगाना चाहा किन्तु तभी कुछ व्यक्तियों की पदचाप से उत्पन्न आहट सुनाई पड़ी। शायद पत्नी ने मेरी दुरवस्था से चिंतित होकर उन्हें पुकारा था, उसकी दृष्टि उधर घूमी जिधर से "क्या है बेटी ?" की प्रश्न भरी गम्भीरता युक्त वाणी सुनाई पड़ी थी। उसने कहा—

'गुरु देव। इन्हें ········।"

बीच में ही बात काटकर किंचित हास युक्त हो, उन्होंने गम्भीरता से कहा—"बस खो दिया धैर्य तूने ? पत्नी इन

शब्दों को सुनते ही स्थिर हो गई थी लगता था जैसे किंचित ग्लानि से उत्पीड़ित हो उठी हो, वह अपराधिनी की भाँति आगन्तुक के चरणों पर दृष्टि गड़ाकर कहने का कुछ प्रयत्न करना चाहती थी——

"मैं ·····मैं ···· ।"

वे बोले——"नारी ही तो है तू भी एक——वह जिसमें ममता का तूफान सिमट कर रह जाता है——दया और करुणा की धारा का प्रवाह, क्षमा और प्रेम की ज्योति से जगमगता दैवीय मन्दिर ······· और पुरुष ····· ।'

"गुरु देव ······ ।" पर लाज और गुरुत्व से घबरा कर फिर भी कुछ न कह सकी——।

गुरुदेव भी अपनी बात अधूरी ही छोड़कर हँस पड़े थे मेरी ओर मुड़कर इतने आत्मीय ढंग में मुझसे ऐसे बोले जैसे मेरे जन्म जन्म से परिचित हों उन्होंने पूछा——" कहो लल्ला अब कैसे हो, कैसी तबियत है। स्नेह से झुका मस्तक पर उनका हाथ मुझे ऐसा लगा जैसे धधकती हुई आग शान्त कर देने वाला हिमाचल का शीतल संस्पर्श। मस्तिष्क के तनाव ढीले पड़ गये, पल भर में ही सारी चितायें उड़ने लगीं। चित शान्त हुआ। लगा–पितृपाणी तुल्य यह हाथ यदि मेरे मस्तष्क पर रहा तो विश्व की कोई भी शक्ति मुझे सन्तप्त नहीं कर पायेगी।

अभिवादन के लिये भी मैं न उठ सका, हाथ ही छाती पर प्रणाम की अवस्था में आ सके, कुछ कहना चाहा तो जबान लड़खड़ा कर रह गई, कन्ठ आनन्द से बोझिल हो गया था, सारे बदन में झुरझुरी सी हो आई, शरीर रोमांचित हो उठा, आँखों में प्रेम जल छलक उठा, वे खड़े थे मैं उन्हें देखता रहा, सीधे-सादे श्वेत वस्त्र धारी, कृतिमता-रहित अत्यन्त स्वस्थ दैवीय आकृति, उन्नत ललाट पर केश विहीन चमकता हुआ शिर

लगता था मानों भगवान शंकर का ज्योति लिङ्ग ही दीप्तिमान हो उठा हो। चढ़े हुए विशाल नेत्र, सुन्दर नासिका दीर्घकृति श्रवण, पतले ओठ भव्य मुखाकृति में दिव्य आलोक के सारल्य से पूर्ण होकर दिखलाई पड़ रहे थे ? वे बोले तो लगा जैसे बिलखती धरती के सन्तप्त हृदय की मौन चीत्कार से आकुल हो कर मँगल मेघ-माला का निर्माण करने के लिए रत्नाकर के विशाल हृयय में वेदना की गम्भीर प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी हो, किंचित हंसे तो लगा जैसे शीतकालीन निशा के अन्त पर पीड़ा से कराहते, ठन्ड से ठिठुरते वसुधा के असंख्य जीवों को शरण देने के लिए मेघाच्छन्न आकाश का हृदय फाडकर अन्तिम आशा के रूप में अनगित करुणा के स्रोतों के समान नभोलालिमा पूर्वोदय के रूप में लाली बनकर प्रकाश घटों से फूट निकली हो, जब प्यार से मेरे मस्तक को उन्होंने छुआ तो लगा कि परम शान्तिमय शक्ति के बीज ने जड़ शरीर में प्राणों का संचारण कराया हो। मैं देखता रहा, बहुत देर तक, मौन केवल मौन। मेरी जिव्हा पर ताला था पर आँखें हृदय से हृदय की बातें कह चुकी थी। मौन को तोड़ते हुए वे ऐसे बोले जैसे सब कुछ समझ गये हों, सब कुछ जान चुके हों——

"बस, बस शाँत हो जाओ लल्ला तुम्हें कुछ नही होगा। अपने को जानो, पहिचानो स्वस्थ हो जाओ। भावावेश की तरङ्गों से चित्त को आलोड़ित न करो।"

चलते-चलते मेरी पत्नी को आवाज दी—

"शान्ता बेटी ऽ ऽ —कहा हो ? यहाँ आओ।"

लाज में सिमटी सफेद पोशाक में लिपटी और ठिठकती हुई पुतली के समान वह गिलास हाथ में लिये शीघ्र उपस्थित हुई। गुरुदेव फिर हँस पड़े · ···" अच्छा सब सुन रही थी पगली, सभी कुछ देख लिया तूने ··· आखिर नारी जो ठहरी। आँचल

मे [illegible] रखा है • • • गिलास में दूध • • • और अरे• • • रे आंखों में फिर वही पानी—वाह रे—अजीब है तुम्हारी कहानी ? आँचल में अमृत और आंखों में करुणाकर धार छिपाये फिरती हो। यूं ही तो मिलकर सारे विश्व को आप्लावित कर रखा है इन धाराओं ने (एकाएक चौंक कर) अच्छा मैं चला, कुछ दवा करना मेरे लल्ला की • : • • • लगा शान्ता आनन्द के आवेग में फैलकर भी लाज के आवरण में सिमटती जा रही हो। गुरुदेव ने उससे अचानक एक प्रश्न किया —

"अच्छा एक बात बतला शांता। कई दिनों से भूखे किसी व्यक्ति को यदि एकाएक बहुत सा भोजन मिल जाए और वह उस पर मात्रा का ध्यान किये बिना टूट पड़े तो क्या होगा बेटी ? बोल बेटी ? उत्तर दे मेरी बात का।"

"वही गुरुदेव ! जो भरी दुपहरी में बहुत प्यासे किसी को बहुतेरा जल पिला देने का फल होगा। उसने बहुत धीमी आवाज़ में" कहा गुरुदेव खिलखिला पड़े • • • "ठीक-ठीक बहुत चतुर हो गई है तू • • • •। फिर गम्भीर होकर संयत स्वर में बोले—

"भूखे को भोजन थोड़ा २ करके, प्यासे को जल थोड़ी २ मात्रा में पिलाया जाय तो कोई हानि नहीं •••••और फिर तू तो •••• मेरी दी हुई औषधि है इस गिलास में•••••पिला दे। आँखों के पानी को रोक जीवन के पानी की रक्षा कर।" कह कर वे चले गए, वह देखती ही रह गई भ्रमित सी। जैसे भावना का प्रवाह भ्रांति का बाँध तोड़ कर वह निकला है। उसने मेरे पास आकर बिना कुछ कहे मेरी कमर को हाथ से सहारा देकर, सिर को सीने पर टिका दूध का गिलास मेरे मुंह से लगा दिया। सारा दूध मैं एक ही साँस में चढ़ा गया। कोई

अत्यन्त सुगन्धित पदार्थ मिला था उसमें मन प्रफुल्लित हो उठा शरीर में शक्ति का संचारण होने लगा। जोड़ जोड़ का दर्द सहज में ही न जाने कहाँ खिसकने लगा। मैंने शरीर की ओर देखा कुछ स्थानों पर पट्टियाँ बन्धी थी, लगा जैसे पट्टियाँ व्यर्थ ही बाँधी गई हों। मन के उत्साह ने उत्तेजना को साथ लेकर जैसे मेरे शरीर की रंगस्थली में प्यार की शहनाइयाँ गूंजा दी हों और रोम रोम इस दृश्य का अवलोकन कर आनन्द में झूम-कर खड़ा हो गया हो। मन में स्फुरती और हृदय में आनन्द होने लगा। शरीर में कम्पन के साथ हाथ पसीजने लगे। दृष्टि किसी चीज पर ठहर गई थी, मुख से शीतल निश्वास के साथ निकला—"शान्ता......।" जैसे किसी संगम पर एक धारा दूसरी से आ टकराई हो—उसके मुँह से भी वर्षों की प्यास लिए एक शब्द फूट निकला, "पारो..... मेरे पारस......।" शान्ता मुझे प्यार से पारस ही कहकर पुकारती थी, जीवन के पौधे पर अनगिन फूल एक साथ खिल उठे, प्यार की कलियां, चिटक-चिटक, प्यार का सुगन्ध उड़ाने लगीं, मधुमास के आने पर मन मधुकर झूम उठा। मैंने अपना हाथ आगे बढ़ाया, उसके कोमल हाथ का स्पर्श पाकर इतना आनन्द उत्पन्न हुआ कि पीड़ा का रूप धारण कर उठा। शरीर उत्तेजना से भर कर नसों में भड़का सा लगने लगा भावावेग से पागल मैंने असावधानी से उसका हाथ इतनी जोर से दबा दिया कि उसकी चीख निकल गई। हाथ छूटने ही वह सम्भल गई, खड़ी हो गई वक्षस्थल से खिसके साड़ी के पल्ले को तुरन्त ठीक किया, और झाँकते हुये उभरे अंगों को ढक लिया, क्योंकि कहीं मेरी दृष्टि जा लगी थी जिससे मन में आकुलता जाग उठी। मैंने उसके सारे शरीर को एक बार फिर देख डाला—लगा, जैसे बरसों वियोग की अग्नि में

तपाई हुई स्वर्ण प्रतिमा सुहागे के सफेद बादलों से लिपटी खड़ी

हो शरीरांग कृश होते हुये भी दीप्ति मान थे - बिना संवारे बालों की उलझी लिपटी बत्ती की तरह बट बटकर एक होगई लटायें किसी तपस्विनी ऋषि-बालिका का स्मरण कराने लगी। ताम्बे की भांति चमकते हुये मुख पर मेरी दृष्टि पड़ी तो लगा जैसे वह कवि की पोषित कन्या शकुन्तला ही तेजस्विनी शक्ति के रूप में प्रगट हो गई हो और मैं जैसे उसके प्यार को भुला देने वाले दुष्यन्त के समान अपराधी सा अपने कुकृत्य की क्षमा माँगने को तैयार पड़ा हूं। न जाने किस लोक में पहूंचकर गुरुदेव की ही भांति समाधिस्थ की सी स्थिति में उसके नेत्र की पुतलियाँ ऊपर चा चढ़ी, उसके मुख पर दिव्यालोक प्रस्फुटित होने लगा। क्योंकि सामने के रोशनदान का प्रकाश सीधा उसके मुख पर पड़ रहा था, शोभा सतेज होकर दीप्ति से जगमगा उठी। उसके उस रूप को देख मैं सकपका गया, स्वयं को उसके सम्मुख क्षुद्र सा अनुभव करने लगा। उसको छूना मेरी शक्ति की बात नहीं। मैं दृष्टि चुराने लगा उस प्रयत्न में मेरी नजर दिवार पर टंगे एक चित्र पर जाकर ठहर गई --

चित्र में अवरुद्ध वन पथ पर लक्षमण, राम और विश्वामित्र का मार्ग रोक कर तमतमाये पत्थर की अहिल्या मानों लगातार प्रश्न किए जा रही थी—"ठहरो समाज सुधारकों। धर्म के पहरेदारों। मर्यादा की रक्षा का दम भरने वालों! शक्ति के गर्व से पूर्ण विजय के अभिलाषियों! सभ्यता के चरण आगे बढ़ाने से पहले मेरे भाग्य का निर्णय कर जाओ, बोलो! किसका अपराध था, मेरा या गोतम की दोष दृष्टि का, पुरुष के आशंकित अनुमान का, इन्द्र के अन्धे कामदेव का या समय की कटु मुस्कान का या यौवन के मधुर आह्वान का या सृष्टा के सुन्दर निर्माण का मैं अटल हूं, डिगूंगी नहीं अपने प्रश्न का

उत्तर लेकर रहूंगी। यदि उत्तर देने में भी अवहेलना की तो

प्रतिहिंसा की आग में यह वंचिता समाज के कण कण को फूंक डालेगी। तुम्हारे कठोर नियम ओलो की भांति गल-गल कर बह जायेंगे।" अरे····· यह विश्वामित्र क्यों खिलखिला रहे हैं—

'नारी —ममता की पुतली! कैसे बन पाओगी इतनी कठोर।" और सहसा राम और लक्ष्मण दो छोटे २ बच्चे उन्होंने आगे कर दिये हों। मानो क्रोध से तमतमाती अहिल्या का सारा शरीर द्रवित हो उठा हो, आंखे अश्रुओं से लबालब भर उठी हों, युगों से छिपी नारी हृदय की पीड़ा शरीर का बांध तोड़ करुणाधार बन बह निकली हो, "मेरे बच्चों मानवों, मैंने तुम्हें आकार दिया, निराकार बनाया, तुम ही तो मेरी आशाओं की सगुण मूर्ति हो, मेरी अनुपमेय शक्ति का स्रोत हो, और मेरे जीवन का आधार भी, मेरे अलौकिक प्रकाश। मेरे ईश्वर! तुम्हें सामने पाकर अब कहाँ जाऊँ, लगा चित्र की नारी पागल हो उठी है, बिल बिला कर रो पड़ी है और मूर्छित होकर राम के चरणों की ओर लुढ़क गई है। जैसे उसका मौन ही चहक रहा हो—' मेरे प्रभु, मैं क्या करुँ, क्या न करुँ?' सहसा लगा जैसे उसका जड़ शरीर पड़ा रह गया और प्राण पखेरु उड़कर आकाश की ओर बढ़ चले हों। "लो समाज के पुरुषों! मैंने तुम्हारे लिए जीवन का उत्सर्ग किया" 'लगा वह रूप बलिदान की महानता से आकाश पर छाने लगा - खड़े रह गये हों राम स्तम्भित से, जड़ से, आश्चर्य चकित देखते हुये विश्वामित्र की ओर नई पीढी पुरानी पीढी के सम्मुख अनेक प्रश्न चिह्न लगाकर खड़ी हो?"

लगातार चित्र को देखते हुये आँखों पर जोर पड़ने लगा, बुदबुदाते हुये कुछ आवाज मुँह से निकली, "मुझे माफ कर दो माफ कर दो शान्ता, मुझे माफ कर दो, मैं··· तुम्हारा अपराधी हूं।"

शान्ता ने मौन तोड़ा, "क्या कह रहे हैं" आप ? क्या यह आपको शोभा देता है, मैं दासी हूं स्वामी। मुझे पाप में क्यूं ढकेलते हैं ? नारी स्वभाव की सहज अनुकूलता में कहे गये ये शब्द भी मुझे तीखे व्यंग्य प्रतीत हुये, सम्पूर्ण हृदय कचोट उठा—"ऐसा न कहो शान्ता, मैं और अधिक सह नहीं सकता, मुझे और दण्ड न दो। मैं पहले ही आत्मग्लानि से गल चुका हूं, मुझे क्षमा कर दो .... बस बस इतना ही कर दो .....।" मेरा गला भर आया उसी भावावेश में उसने भी अपने स्वर मिला दिये—"ऐसा न कहो, पारी मेरे पारस ऐसा न कहो। ऐसा न कहो।" भावों की गंगा जमना में डूबते उतराते मैंने कहा—

"हाँ शान्ता। तुमने ठीक ही मेरा नाम पारस दिया था, मेरा हृदय भी पत्थर का बना हुआ है, विवाह के बाद प्रथम मिलन में ही तुमने कहा था, मेरे पारस तुम्हारे सम्पर्क में आकर तुम्हारा सम्पर्क पाकर मैं सोना हो जाऊँगी।" और सच मुच तुम तो केवल सोना ही नहीं बनी शक्ति पाकर सोने में सुहागा हो गई हो और मैं रह गया पत्थर का पत्थर।

उसने व्यथित होते हुये भी मुख पर मुस्कान लाने का प्रयत्न किया पर व्यंग्य वहाँ भी झांक कर खड़ा हो गया, उसने कहा, "मैंने यह भी तो कहा था पारी, कि तुम्हारा असली नाम तो प्रशान्त हीं है और तुम्हारी शान्ता को शान्ति तुम्हारी शान्त गहराइयों में ही मिल सकती है, पुरुष के विशाल तरंगा-यित जीवन में नारी तो सीपी की ही भांति है जहाँ भावनाओं की अत्यन्त गहराई में प्यार के मोती पनपा करते हैं। खैर छोडो इन बातों को—गयी बातों का क्या दोहराना। अब आप आश्वस्त होकर अपने शान्त रूप को ग्रहण कीजिये......।

मुझे लगातार ऐसा ही लग रहा था कि शान्ता विष की घूंट सा पीकर जान बूझकर गम्भीरता का अभिनय कर रही

हो····· मैं अपनी धुन में कहता चला गया—

"मैं जानता हूं, मैने भयंकर अपराध किया है·······।"
कुछ आगे कहने से पहले ही उसने कहा—

"अपराध ? अपराध सच पूछो तो न आपका है और न मेरा। घटित में या तो समय का दोष है अथवा उन परम्पराओं का जिनमें हमारी अधकचरी बुद्धि सहायक होती है।"

एक दार्शनिक की भाँति चिन्तन की स्थिति में उसने शब्दालाप को प्रवाह का रूप दे दिया, मेरा मौन ही उचित था, उसका कहा, ध्यान से सुनने लगा—

"विचारों की उहापोह में हम विविध प्रकार की कल्पनाएं कर बैठते हैं, भावी दुख की कल्पना मात्र से आतंकित हो उठते हैं, दुःख से अधिक दुःख की कल्पना ही मानव को कलपाती है, उससे बचने का ज्यूं ज्यूं प्रयत्न किया जाता है त्यूं त्यूं और अधिक फंसा जाता है।"

मैं आश्चर्य चकित था, यह नारी बोल रही है—मेरी पत्नी शान्ता—या उसके भीतर बैठा हुआ कोई दार्शनिक मनीषी—सन्त ? मेरे चुप रहने पर उसने अपना क्रम जारी रक्खा—

"पारस ! आप पुरुष हैं, मैं अबुद्ध, अबला मात्र आपको क्या समझाऊंगी, केवल हृदय की मार्मिक अनुभूतियों का लेखा जोखा प्रस्तुत कर रही हूं हम सुस्थिर विवेक से कार्य न करके, अव्यवस्थित चित्त की गति विधि से आन्दोलित होते हैं, सत्य तो कोसों दूर छूट जाता है और दुःख तथा क्रोध का भयंकर झंझावात मन की कोमल भावनाओं को क्षणभर में उड़ाकर परिस्थितियों के बीहड़ मरुस्थल में ला पटकता है, जहाँ केवल कठोरता की चट्टानें ही उभरी हुयी दिखलायीं पड़ती है, जिनसे टकरा टकराकर, ठोकरें खा खाकर, रुदन तथा भ्रमित से हम सदैव अशान्त ही बने रहते हैं, कभी ईश्वर को, कभी भाग्य को

और कभी दूसरों को या स्वयं को कोसते रह जाते हैं। कभी २

तो ऐसा होता है कि अपनी समझ से दूसरे का पूर्ण हित चाहते हुये भी हमारी क्रिया उसके लिए अभिशाप बन कर खड़ी हो जाती है, इसका कारण है समय को न समझने का दोष।

एक-एक बात मेरे मन पर पूरी तरह अंकित होती जा रही थी फिर भी, शान्ता बात समाप्त कर शीघ्र ही चली न जाए, उसे अटकाये रखने के दृष्टिकोण से उससे बैठने के लिए कहते हुये पूछा—

"समय के न समझने की बात मैं नहीं समझा, तुम्हारा क्या अभिप्राय है ?"

यद्यपि मेरे प्रश्न ने वाक प्रवाह में अवरोध उत्पन्न कर दिया था किन्तु उसने उसी शान्त मन से संयत स्वर में बैठने का उपक्रम करते हुये कहा—

"एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो सकती हैं स्वामी ! याद कीजिये, मेरा और आपका विवाह किन परिस्थितियों में हुआ था—यह एक प्रेम विवाह था, जो समाज, परिवार और इष्ट जनों को ठोकर लगाकर किया गया था, प्रेम के आवेश में समाज से विद्रोह की बात की थी हमने, खूब खिल्ली उठाई थी प्राचीन परम्पराओं की विवाह में होने वाले अपव्यय के साथ नारी जाति की गुलामी की चर्चा करते हुये हमने समानता के आदर्श की बात भी कही थी पर समय शायद उस समय भी हम पर, खड़ा हुआ, हँस रहा था। हमने शादी की, बड़ी शान्ति मिली। कोई आडम्बर न भीड़भाड़। मैं और मेरी सखियाँ नवीन विचारों और परम्पराओं के कारण, बैंड बाजों के जलूस निकालते हुए दूल्हे राजाओं के कार्टून देखकर हँसा करती थी और मिठाई खा-खाकर तमाशा देखने वाले गवाह बराती शर्म से झुक-झुक कर हमारे सामने से निकल जाते

थे।"

उसकी बात में रस लेते हुये भी मैंने बीच में कुछ कहकर उसे थोड़ा आराम देना चाहा—

"यह तो मैं आज भी कहता हूँ शान्ता, प्राचीन परम्परागत शैली पर समाज में जिस प्रकार के विवाह सम्पन्न कराये जाते हैं वह दोष पूर्ण तो है हीं मुझे उनमें करप्शन (भ्रष्टाचार) की भी गन्ध आती है। बुरा न मानो नारी जाति की पवित्रता पर मेरा आरोप नहीं है, मैं समाज में पनपते भ्रष्टाचार की बात कह रहा हूं। कल्पना करो शान्ता, लड़के लड़कियों की इच्छा के बिना; बिना जान पहिचान के एक दूसरे की रुचि, गुण-दोष आदि से अनभिज्ञ, उनकी परस्पर की भावनाओं को पहचाने विवाह अनमेल व्यक्तियों की सिसकती हुई कहानियाँ बन जाती हैं। स्त्री और पुरुषों की वासना में मनोनुकूल व्यक्तित्व की चाह अनजानी राहों पर भटक जाती है, क्या तुम इसे केवल भेड़ बकरियों का सौदा ही नहीं मानोगी जिसमें बहुत से बिचौलिये परिस्थितियों का पूरा-पूरा लाभ उठाकर दो निर्दोष प्राणियों को जीवन की भयंकरता में डाल अलग हो जाते हैं। लोभ की ज्वाला में भूल से, कई माता-पिता भी उत्पीड़न के साथ पछताते पाये गये हैं और··· और·····।"

मेरी बात काटते हुये शान्ता ने कहा—"आप अधिक आवेश में न आये आपको विश्राम की आवश्यकता है। बहस में भड़कता व्यक्ति निश्चित ही अपना सन्तुलन खो बैठता है मैं आपकी बात पूरी कर देती हूं—जब बरात चढ़ती है, झुण्ड बना बनाकर बैंड बाजे बजाते हुए जो दूल्हों के जलूस निकाले जाते हैं क्या वे सामन्त शाही छीनां झपटी की नकल नहीं है? वे सेना की चढ़ाई का चिह्न है या अधिक से अधिक कुछ रक्षकों की तैनात करके गवाहों की संख्या बढ़ाने के समान हैं। इसके लिए तो

कोर्ट सबसे बड़ी साक्षी हो सकती है, आज के युग में इसकी क्या आवश्यकता है।"

मैं प्रसन्न था कितने सुन्दर रूप से स्पष्ट करते हुये शान्ता मेरे विचारों को प्रस्तुत कर रही थी मेरा अनुमान था निश्चय ही अब वह अपने जाल में स्वयं फंस जायेगी। वह निरन्तर बोलती रही —

"अनावश्यक रूप से भौंडा, साज श्रृंगार, आतिशें फुलझड़ियाँ, हिप्पियों की तरह युवकों के नाच गान के भौंडे प्रदर्शन राष्ट्रधन का अपव्यय तो है ही साथ ही भ्रष्टाचार के अंकुर का उत्पादक बीज भी ढोल बजाकर किये इस तमाशे को समाज के नई वय पर पग रखने को तैयार किशोर और किशोरियाँ जब इसे देखते हैं तो उनके मन मस्तिष्क में परिपक्व या अपरिपक्व अवस्था में ही जवानी का सागर लेने लगता है। विशेष आकर्षण उन्हें गुपचुप उस रस की बातें करने तथा आंख मिचौनियों के खेल खेलने पर विवश कर देता है। सुप्त यौवन की उमङ्गे उनके हृदय के द्वार पर आकर किसी आगल के स्वागत में जीवन का ढेर करने मे जुट जाती है। धन फूंक कर बेटी के घर में प्रकाश करने वाले इन वैभव शालियों का निर्धन पड़ौसी निश्चय ही उत्पीडन और द्वन्द्व का शिकार हो जाता है और ममता की बलिवेदी पर, वह, झूठे मान का प्रदर्शन करने के लिए जीवन के सम्पूर्ण आदर्शों की, आहुति देने के लिये तैयार हो जाता है, किसी भी प्रकार धन पैदा करने के लिये अनेक पापों को अपना बैठता है ताकि धनवान की ही भाँति वह भी अपनी बिटिया का आँगन चमका सकें और दहेज की भयंकर ज्वाला में जल कर तो निश्चय ही उसे अपने आँगन का प्रकाश भी गिरवी रखना पड़ता है; छल छलाते आँसुओं से भीगी पगड़ी को अपनी इज्जत की खिल्ली उड़ाते हुये समधी के चरणों पर

रखकर नाक रगड़नी होती है। बेटी वाले के दरवाजे पर बैठकर नमक खाने वाले गवाह, समाज के ठेकेदार, दरबारी नवरत्न अपना मुंह बन्द करके लौटने की तैयारी मे अपनी नमक हरामी का सबूत देते हैं। वैसे तो वे खाते २ भी नमक मिर्च का नाम ले लेकर खिलाने वालों की नाक में दम करते रहते हैं अतः उनसे किसी की मंगल कामना की आशा कैसे की जा सकती है, इतना सब कुछ होने पर भी जब सम्पूर्ण जीवन में, कटुता का विष, विचारों की असमानता में घुलकर प्रकट होता है तो समाज की रुढ़ियों की आग में भूने गये दुल्हे दुलहिनों के स्वप्न जीवन की दुर्गन्ध को वातावरण में भर देते हैं।"

हर्षातिरेक से—अपने विचारों को पुष्ट होते हुए देख मैं बीच में हीं चिल्ला उठा, "तो बोलो शान्ता, हमने फिर भी क्या ठीक नहीं किया, "उन परम्पराओं को तोड़कर, समाज के प्रति विद्रोह का पग उठाकर समाज की क्षयग्रस्त रुढ़ियों को तोड़कर, नवजीवन का सूत्रपात कर ·······।"

"नहीं ·····।" शान्ता की आकस्मिक असंभावित "नहीं" पर मैं ऐसे चौंका जैसे बहुत स्पीड़ पर जाती हुई मोटर को अचानक बहुत जोर का ब्रेक लगा दिया गया हो, या हवा में उड़ते किसी पक्षी के एक पंख पर तलवार का वार कर नीचे लुढ़का दिया गया हो—

"नहीं मेरे प्यारी, हमसे गल्ती हुई है। समय को न समझने के कारण हम अपनी दिशाओं से आगे बढ जाते हैं हमारे मन मस्तिष्क और संस्कार पीछे की मन्जिल पर ही पड़े रहते हैं और समय की उहापोह में ऐसा तनाव पैदा हो जाता है कि दम टूटने लगते हैं, नवीनता की ओर बढ़ने का मोह और जड़ जमाये प्राचीन संस्कारों की रस्साकशी में जीवन छिन्न भिन्न हो जाता है; विवाह के सूत्र टूट टूटकर बिखर जाते हैं, कटुता

जीवन का मन्त्र छोड़ने लगती हैं ।"—

उसके भाषण का प्रवाह व्यंग्य को आधार बनाकर बढ़ रहा था, मैं समझ रहा था यह सब कुछ हमारी जीवन गाथा को लेकर ही हो रहा है, फिर भी सब कुछ सहन कर उसे अपने तर्कों में उलझाने की चेष्टा करने लगा—

"ऐसा कैसे कह सकती हो शान्ता ? प्राचीन रूढ़ियों से विद्रोह करके जो युवा पीढ़ी नवदिशा की ओर झुकी है, उनमें अनेक जोड़ें ऐसे हैं जिन्होंने सोच समझकर, जान बूझकर देख-भाल कर और एक दूसरे की भावनाओं को पहिचान कर ही शादियाँ की हैं किन्तु यदि फिर भी एक दूसरे के साथ विश्वास घात करें ।

"तो समझना चाहिये कि समझने में कहीं गल्ती रही है........ ।"

मेरे नेत्रों के सामने पुराना गोपाल काण्ड उभरने लगा था, शान्ता की भृकुटियों में क्षण भर का चढ़ाव उत्पन्न हुआ, मस्तक पर क्षोभ की रेखायें उभरी किन्तु अत्यंन्त सावधानी से उसने संयत स्वर में मुस्कराने का अभिनय किया, मैं आगे कुछ कहता, मेरी बात बीच में काटकर ही उसने कहना शुरु किया —

"तो समझना ही चाहिये कि समझने में कहीं भूल हो रही है । हम एक दूसरे को समझने का ढोंग करते हैं, वास्तव में समझते कुछ भी नही क्योंकि हमारा ध्यान समझने की ओर होता भी नहीं - रूप एवं बाह्य व्यक्तित्व की झलक वासना के उत्तेजक फन्दे डाल कर हमें मोहक जाल में इस प्रकार जकड़ती है कि प्रेमी को प्रियतम के अतिरिक्त संसार में कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता । वे एक दूसरे के लिये देवी और देवता बन जाते हैं, आग और घी के समान चचल होकर भड़क उठते हैं, जीवन का कौनसा अंश जला जा रहा है, उसकी कोई परवाह उन्हें नहीं

रहती, इस रोमानी सागर से निकल कर जब यथार्थता की कठोर भूमि पर पर अपने मदहोश कदम रखते हैं तो प्रेम का नशा काफूर हो जाता है। एक और दृष्टि से मैं कहती हूं कि हम लोग समझने का ढोंग करते हैं और अपने को फारवर्ड (अग्रगामी सभ्य) घोषित करने के लिये उद्दत्त अथवा विशाल हृदय होने का फैशन करते हैं जिसका बहुत कुछ कारण बिना सोचे समझे पश्चिम की नकल है। पश्चिमी परिवेश में जेन्टिल मन (सज्जन) बन जाना कितना सरल है, पश्चिमी आचार विचार रहन-सहन रीति रिवाज तथा संस्कृति के उपकरणों और सभ्यता का सहारा लेकर शिष्टमान जगत का क्लब मैम्बर (गोष्ठ सदस्य) बन जाने में अधिक समय नहीं लगता। पश्चिमी के गृहस्थों की मान्यतायें निभाना उतना ही कठिन। पश्चिम के लोग प्रेम विवाह करते हैं, गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने से पूर्व वे पर्याप्त समय तक संसर्ग लाभ उठाकर एक दूसरे की भली प्रकार छान बीन कर लेते हैं एक दूसरे के मित्रों और सम्बन्धियों का पर्याप्त परिचय पा लेते हैं और यदि नहीं तो भी गृहस्थ जीवन स्वीकार कर लेने पर उनमें इतनी सामर्थ्य या सहन शक्ति होती है कि वे अपने साथी के अतिरिक्त मित्रों को भी सहन कर सकते हैं जब कि हम साथी को अधिकृत वस्तु समझ कर उस पर एकच्छत्र शासन प्रदर्शित करने के प्रयत्न में उसकी सम्पूर्ण आकाक्षाओं एवं मनो भावनाओं का दमन कर देते हैं उससे पुराने समय के 'दास-दासियों सा व्यवहार करने लगते हैं; अविश्वास के दायरे में बाँधकर उसकी एक-एक क्रिया में शंका के शूल गाड़कर खड़े कर देते हैं, स्वयं ईर्ष्या की अग्नि में जलते हुये दूसरे के लिये उत्पीडन की भट्टी तैयार करते हैं ---।" उसके प्रवाह को तोड़ते हुये मैंने पूछा—

"तो क्या तुम्हारा तात्पर्य पाश्चात्यों की हर बात ग्रहण कर लेने से है ?"
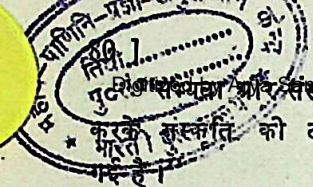
तु ... सभ्यता और संस्कृति में पर्याप्त अन्तर है, सभ्यता गृहण करके संस्कृति की टोह में हमारी गति त्रिशंकु जैसी हो गई है।

"मुझे लगता है, शान्ता अपने तर्कों में या तो तुम स्वयं उलझ गई हो या अपनी मनोभावना स्पष्ट नहीं कर पारही हो, क्या पाश्चात्य सभ्यता के साथ तुम पाश्चात्य संस्कृति का अधिग्रहण भी अपेक्षित समझती हो, स्वदेशी को छोड़ विदेशी की ओर प्रवृत्त करना चाहती हो ? क्या विदेशों के प्रेम विवाह सर्वथा दोष रहित हैं ?"

"अपराध क्षमा हो नाथ ! सम्भवत: यहाँ भी समझने में भूल हो रही है, आपके कान में किसने कह दिया कि मैं आप पर विदेशी संस्कृति लादना चाहती हूं ? मैंने कब विदेशी प्रेम विवाहों के दुष्परिणामों का विरोध किया है ? मानती हूं विदेशों में भी विवाहों के दुष्परिणाम सिकलते पर वहाँ मत वैभिन्न दिखलाई पड़ने पर खुले तलाक की छुट भी तो है और अपने यहाँ यह मामला खटाई में आ जाता है। यहा तलाक लिये हुये दम्पत्ति लाँछित और तिरस्कृत से दीख पड़ते हैं पश्चिम जबकि उनके लिये स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाता है। कुछ की हम नकल करते हैं और कुछ में हमारे संस्कार हमें जकड़ लेते हैं यह आश्चर्य ही तो दु:ख का परिणाम है।

पश्चिम की नकल न करके यदि हम पूर्व में ही केन्द्रित रहें तो कितना अच्छा हो ? पश्चिम में विवाह एक सामाजिक ठेका है तो पूर्व में धार्मिक सस्थान। धर्म के डर से हम एक दूसरे को सहन करते हैं. और व्रत निभाने के लिये शंकाओं को जन्म देने वाले अनेक विचारों से बच जाते हैं, व्यर्थ ही दायरे से बाह्य आकर उपहास के विषय नहीं "बनते क्योंकि बहुत कुछ जिम्मेदारी तो संरक्षकों की बनी रहती है।

मैं इससे भी आगे सोचती हूं, पूर्व-पश्चिम, देशी-विदेशी, प्राचीन-अर्वाचीन आदि नाम लेकर लोग खुद उलझते हैं और दूसरों को उलझाने का प्रयत्न करते हैं। सब की तह मे पहुंच कर देखें तो प्रश्न मानव के मूल भूत संस्कारों की समस्या का होगा। वास्तव में कोई भी स्थान, कोई भी समय और कोई भी जाति क्यों न हो, विवाह के द्वारा दो आत्माओं का मिलन होता है भौतिक आधार पर यह शरीरों का मिलन होता है, शरीरों की प्यास बुझजाने पर या तृष्णा बढ़ जाने पर यह संबंध बनकर बिगड़ जाता है जिसका सुलझाव आध्यात्मिक जगत में ही सम्भव है।

विना आध्यात्मिकता के मानव भौतिकता में उलझकर रह जाता है, सुन्दरता को प्यार करता है असुन्दरता को घृणा। यदि बाहरी आवरण को छोड़कर दो आत्माएं एक दूसरे से मिलकर एक हो जाएं तो शाश्वत सौन्दर्य दिखलाई पड़ेगा, वाह्य क्रीडाएं केवल क्रीडाएं ही रह जायेंगी।

हुस्ने सूरत चन्द रोजा, हुस्ने सीरत मुस्तकिल।
उससे खुश होती है आँखें, इससे खुश होता है दिल॥

पर जगत में न जाने क्यों आध्यात्मिकता की बात दिवा स्वप्न ही दिखलाई पड़ती है। आप भौतिक आधार पर ही विचार करें तो भी विवाहों के ये परिणाम आदिकालीन सभ्यता का प्रथम चरण में प्रवेश करने वाले मानव और मानुषियों की छीना झपटी ही है और इन समस्याओं का सुलझाव भारतीय मनीषियों द्वारा सुझाया गया योग मार्ग ही है—जिसके द्वारा दोनों वर्ग अपनी मूलभूत वृत्तियों पर नियंत्रण रखने का प्रयत्न करते हैं। वाम मार्गियों ने भी इसका……।"

सहसा बाहर से शंखध्वनि सुनाई पड़ी, एक दो व्यक्ति की आवाज से लगा कि सबको आरती के लिये बुलाया जा रहा है क्योंकि मेरी पत्नी भी सावधान होकर उठने का उपक्रम करने

लगी थी। वह बात उसने अधूरी ही छोड़ दी थी।

चलने से पहले उसने जो रहस्य खोला उसे सुनकर मेरी दशा ऐसी हो गई जैसे बरसों की कैद भुगतने के बाद किसी को यह बतलाया जाय कि वह पूर्ण निर्दोष था। शांता ने बतलाया—

"मेरे प्यारे जिस गोपाल को देखकर तुम्हारे मन में ईर्ष्या की आग धधकी थी वह मेरा सगा भाई, मेरा बड़ा भाई गोपाल था जो बचपन में तुम्हारे साथ पढ़ा था और बाद में किन्हीं परिस्थितियों के कारण सेना में भर्ती हो गया था। आज भी वह सेना का एक आफिसर है, कुछ दिनों की छुट्टी पर आया था, मुझे उसकी पोस्टिंग का पता नहीं था, हमारा प्रेम विवाह उसकी अनुपस्थिति में हुआ था; तुमने भी मेरे परिवार के विषय में कभी कुछ पूछा ही नहीं था क्योंकि मेरा रूप ही तुम पर छा गया था। मैंने भी तुम्हें कभी कुछ बतलाया नहीं क्योंकि अधिक प्रश्न उठजाने पर न जाने पिछले जीवन के कितने रहस्य खुल जाते और मैं किसी भी मूल्य पर अपने प्रेम को खोने के लिये तैयार नहीं थी। बदले में मैंने भी तुम्हारे जीवन के विषय में कोई प्रश्न नहीं किया।"

मैं अन्दर ही अन्दर सिसक रहा था; वह चल दी, कुछ सोचकर चार कदम चलने पर पुन. लौटी.........।

"सोचने और समझने से अकेले दोषी तुम ही नहीं हो, मैं भी हूं। हम सब के साथ एक अदृश्य शक्ति नियती नटी अपना खेल खेलती है।" कहकर चली गई, मेरा मन "शान्ता" २ पुकार रहा था पर मुंह से आवाज न निकल सकी। अशान्त मन को शान्त करने के लिये मैं भी आरती में जाना चाहता था।

जीवन एक गोलाकार चक्र के रूप में बहुत तेजी से मेरी आंखों के सामने घूम रहा था, जिसकी परिधि दीर्घ से दीर्घतर होती जा रही थी, लगा मेरे बाल कुतूहल में बिजली का बटन

दब जाने से सैंकड़ों मशीनों के चक्के एक साथ घूमने लगे हों और रोशनी की झटपटाहट में एक पट्टे के साथ लिपटकर मैं सुलझने के प्रयास में और अधिक उलझता जा रहा हूं पर न जाने कौन सी अदृश्य शक्ति क्षति नहीं पहुंचने दी, लगा जैसे हिंडोले के ऊंचे नीचे झकोले लगातार झुला रहे हों।

शान्ता के द्वारा किये गये रहस्योदघाटन से जितनी प्रसन्नता हुई थी उतना ही मन किसी निर्दोष की पीड़ा का अनुभव कर पश्चाताप और ग्लानि से जन्मने लगा। दुख और सुख के द्वन्द्व में एक का चयन करपाने में असमर्थ मेरे सम्मुख एक और समस्या मुंह बाकर खड़ी हो गई······शान्ता के अन्तिम शब्द, ऐसे मेरे मस्तिष्क में गूंजने लगे जैसे दो चक्रों के बीच कुछ अटक जाने से कड़कड़ाहट की आवाज होने लगी है। ऐसा क्या रहस्य था, जो शान्ता मुझे बतला न सकी और जिससे प्रेम के बन्धन टूट जाते ?

दुश्चिन्ताओं से घिरा जब मैं इतना व्यग्र हो रहा था तो शान्ता ने गिलास हाथ में लिये हुये, दो तेजस्वी नवयुवकों के साथ, प्रवेश किया। उसके कहने पर औषधियुक्त दुग्ध का पान कर मैंने स्फूर्ति और चित्त में स्थिरता का अनुभव किया। उसने गुरुदेव की आज्ञा कहते हुये मुझसे आरती में सम्मिलित होने की प्रार्थना की। मैं चेतन हो गया था, अब मुझे अनुभव हुआ अधिक चोट न होकर केवल कष्ट की कल्पना ही मुझे निढाल कर रही थी, स्वयं को सर्वथा एकाकी समझाकर मैं आतंकित हो उठा था इसीलिये पीड़ा कई गुणा अनुभव हो रही थी। भरपूर नींद और मिलन के सुख और अपरिमित स्नेह ने मुझे बिल्कुल चंगा कर दिया, मैं स्वत: ही उठ बैठा, बांये पैर से कुछ लंग-

ड़ाता हुआ उनके साथ चला—

बाहर निकल कर मैंने देखा, एक धर्मशाला थी, चारों ओर छोटे २ कमरे थे, उत्तरी कोने पर एक कुंआ और बीच के आँगन में विशाल वट वृक्ष। कमरों से निकल २ कर बहुत से व्यक्ति मेरे रास्ते पर ही चले जा रहे थे। सामने एक छोटा-सा पंडाल था—विविध प्रकार के पत्तों और बनफूलों से सजा, सामने किसी तपस्वी का विशाल चित्र मालाओं से सजा, लम्बी लम्बी दाढ़ी और जटाओं से युक्त तेजोमय और ईशत्व से पूर्ण प्रतीत हो रहा था, मन स्वतः ही नत मस्तक हो गया। एक ओर गुरुदेव का ऊँचा आसन लगा था जिसके पास मुझे बैठाया गया।

धर्मशाला ने किसी आश्रम का रुप ले लिया था। भक्त जन एकत्रित हुये, गुरुदेव खड़े हो गये उनके साथ समवेत स्वर में सब स्तुतियाँ गाने लगे, अनेक श्लोकों के उच्चारण के बाद शंकर का स्तोत्र प्रारम्भ हुआ, सभी भक्त भावविभोर होकर गा रहे थे। अन्त में "शम्भो शम्भो" की ध्वनि सारे पंडाल में गूंज-गूंजकर पास की पहाड़ियों से टकरा-टकरा कर लौटने लगी। लगा अनेक भक्त किसी अलौकिक लोक में विचरण कर रहे हैं, जिन्हें अपने आस पास की कोई सुध न रही। कुछ आँखें बन्द किये मौन ही रह गये थे, समाधिस्थ से कुछ होठ ही फड़फड़ा रहे थे, उनके मन पर आत्मिक आनन्द दीप्तिमान होकर फूट पड़ा था, जैसे पलकों में बैठे किसी दिव्य पुरुष से वार्तालाप हो रहा था। कुछ के हाथों की केवल तालियाँ ही बज रही थी, बन्द आँखों से आँसू झर रहे थे और "शंभू शंभू" की तीव्र पुकार चल रही थी।

कुछ देवियाँ भी समाधि की स्थिति में आ चुकी थी जिनमें

कुछ ने तो बाँसुरी वादक कृष्ण की त्रिभंगी मूर्ति की आकृति

धारण कर ली थी, कोई आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ ऊपर करके रह गई थी, नेत्र बन्द होते हुये भी मुखाकृत भावों पर किन्चित कृत्रिमता नहीं थी। तो भी कुछ ऐसे थे जो अपनी वृत्तियों से संघर्ष करते हुये से बलपूर्वक मुद्रायें बनाने का प्रयत्न कर रहे थे, स्वयं को समाधिस्थ दिखलाने के लिए खींचातानी कर रहे थे, कुछ असफल होकर समाप्ति की प्रतीक्षा भी करने लगे थे।

कोई-कोई ऐसे भी थे जो इधर-इधर ताक झाँक करके कभी आँखे खोल लेते और कभी बन्द कर लेते थे, कभी २ जोर से ताली बजाकर दूसरे ही क्षण निस्तेज से होकर हाथ ढीले छोड़ देते थे और सहसा हवा निकले हुये ग्रामोफोन के रेकार्ड की आवाज की तरह "शम्भो ऽ ऽ ऽ ऽ श·· म···भो ऽ ऽ ऽ" कह कर रुक जाते और कभी रखे हुये इलायची दाने तथा देवियों के पृष्ठ भाग पर दृष्टि गड़ाने लगते, पर गुरुदेव की दृष्टि घूमते ही जोर जोर से "शम्भो शम्भो" पुकारने लगते। गुरुदेव की मुस्कान में यंग्य फूट पड़ता, वे विभिन्न क्रीड़ाएं देख रहे थे, कुछ को देख उनके नेत्र करुणा से भर आते, उन्हें देखकर मैं सानुभूत विचार करने लगा—

"ईश्वर ने इच्छा प्रगट की 'एकोऽहं बहुस्याम', वह एक से अनेक हो गया, विविध रूपों में विचरण करने लगा, विविध प्रकार की क्रीड़ाओं से युक्त शरीरों को देखकर विविध प्रकार की अनुभूतियों का आनन्द उठाने लगा, फिर भी निष्कलंक, निर्द्वन्द्व, सबसे दूर—जैसे खिलौने वाले ने कुछ खिलौने बनाये और उनकी विविध मुद्रायें देखकर स्वयं ही आनन्द उठा रहा हो कुछ को ऊँची स्थिति में देखकर आनन्दित होता हो और विकृत स्थिति वालों को ठीक करने का प्रयत्न करने लगता हो। जैसे एक बार उनकी मशीन ठीक कर पुनः खेल-कूद में लगा देता हो, जो खिलौने उसकी तरफ बढ़ने लगते हो, उन्हें दौड़कर

हाथों में उठा लेता हो।

मैं गुरुदेव को देख रहा था और गुरुदेव भक्तजनों की विभिन्न चेष्टाओं को। प्रभु जैसे सब कुछ जानकर भी अनजान हो जाते हैं वैसे ही वे भी सब कुछ भूलकर अपने आप में समा रहे थे। अचानक उनके नेत्रों की पुतलियाँ ऊपर चढ़ गई, मुद्रा गम्भीर हो गई और शँख की गम्भीर प्रतिध्वनि के समान 'शम्भो' स्वर का लम्बा उद्घोष सुनाई पड़ा। अव्यवस्थित चित भी स्थिर हो चले जैसे अनेकानेक बहते भटकते तिनकों को किसी चुम्बकीय आकर्षण से एक स्थान पर जोड़कर खड़ा कर दिया गया हो। बाह्य साक्षात्कार तिरोहित हो चला, नेत्र बन्द होने के साथ मस्तिष्क में घंटे की तरह शम्भो शम्भो' की प्रतिध्वनि गूँजने लगी। एक लाल-लाल प्रकाश के बीच सारे विश्व को घेरती हुई वह दिव्य आकृति दिखलाई पड़ने लगी जो जटाजूटधारी पुरुष के रूप में विशाल चित्र में अंकित थी, 'कभी गुरुदेव के रूप में और कभी आसुतोष शंकर के रूप में। हृदय विचित्र आनन्द से भरता जा रहा था।

कह नहीं सकता कितनी देर इस स्थिति में बैठा रहा, आँख खुली तो शान्ता मुझे हिलाकर उठा रही थी।

"देखो! गुरुदेव आपसे कुछ बातें करना चाहते हैं, सामने देखा गुरुदेव के अतिरिक्त सम्पूर्ण भक्त समुदाय जा चुका था, शान्ता भी चली गई। केवल मैं और वे ही शेष रह गए। किंचित मुस्कान के साथ उन्होंने मुझसे प्रश्न किया—

"कहो लल्ला, कैसे हो?"

लगता था एक एक शब्द के साथ ममता लिपटी चली आ रही हो, हृदत भावनाओं से आपूरित था, आनन्द का भार सम्भाले नहीं सम्भल रहा था, बहुत कुछ कहना चाहता था पर कह कुछ भी न सका······ बस कातर दृष्टि से उनकी ओर

देखना हुआ एकाएक चरणों में गिर कर फफक पड़ा, उन्होंने पुछकारते हुये दोनों बाहों में भरकर वक्ष से लगा लिया—

"यह क्या करता है लल्ला, पुरुषार्थी बन। रोने से क्या मिलेगा ?" बचपन में मुझसे अत्यधिक प्यार करने वाले पिता मेरे सम्मुख साकार हो उठे, जो शेर कह कहकर मुझे शाबाशी दिया करते थे। लगा किसी दया के फरिश्ते ने आंचल में छुपा लिया हो। भगवान आसुतोष की गोदी में बालक मार्कण्डेय की भाँति मैं आश्वस्त हो गया। मन के संताप को बादलों की भाँति घुल घुल कर समाप्त होता हुआ देख मैंने संजोकर कुछ शब्द कहे—

गुरुदेव ! मुझे इन चरणों में स्थान दीजिये, मैं कहीं नहीं जाऊंगा मुझे यहाँ जन्मों की निधि मिल गई है, मेरे पापों को क्षमा कीजिये, मेरे दुर्गुणों को भुला दीजिए, मुझे अभय दीजिये गुरुवर !

"यही तो मैं भी तुझसे कह रहा हूं रे ! अभय होजा, निर्द्वन्द्व होजा, पुरूषार्थ को जगा और साधना के मार्ग पर लग जा !"

"किन्तु मैं पापी हूं, पतित हूं, नीच हूं गुरुदेव ! मुझसे साधना कैसे हो सकेगी।"

"यह मत सोच कि तू पापी है, यह सोच कि कर्म की गंगा तेरे पापों को धो डालेगी, तू पापी नहीं है निष्कलंक है। जैसी कल्पना करोगे, वैसे स्वप्न देखोगे, जैसे स्वप्न देखोगे वैसे निष्कर्ष प्राप्त करोगे जैसे निष्कर्ष प्राप्त करोगे वैसी सिद्धी पाओगे। सोचो, तुम शक्ति के अक्षय भण्डार हो, शक्ति का प्रस्फुटन होगा तो सम्पूर्ण जीवन और जगत आन्दोलित हो जायेगा। तुम साधक हो, साधक थे और साधक रहोगे ! अवरोध और

बाधायें तो उपस्थित होती ही रहती हैं। मैं तो तुम से कहता हूं,

सिद्धि की परवाह मत करो, वस साधना को पकड़ लो, सिद्धी तो साधना में, फूल में सुगन्ध की भाँति, स्वयं छिपी रहती है।"

"किन्तु यह साधना ही तो कठिन है गुरुदेव !"

"तूने मुझे गुरुदेव कहा है ना, फिर इस बीड़े को दूसरा कौन उठायेगा ? पर मैं तुझे मार्ग ही वता सकूंगा, वह इच्छा शक्ति तो तुझे स्वयं अपने अन्दर उत्पन्न करनी होगी। एक बात बताऊँ लल्ला ! शक्ति हीन कायर, कदर्य तो इस संसार में मृत्यु से पूर्व ही मर जाते हैं। या तो स्वयं समाप्त हो जाते हैं। या समाप्त कर दिये जाते हैं।

तू शक्ति का संचय कर, दर-दर पर नाक नहीं रगड़ना पड़ेगा, जीवन पापमय नहीं पुण्यमय दिखलाई पड़ेगा। अभाव ग्रस्त कलुषमयी कालिमा के स्थान पर जीवन के मंगलमय प्रभात का उदय होगा, जीवन के कर्मदीप उत्साह की अग्नि से प्रज्ज्वलित होकर आशा की लौ सजायेंगे। पुत्र, इस शक्ति के अभाव में ही एक मनुष्य कभी किसी साधु के सम्मुख मस्तक टेकता है कभी किसी देवालय की चौखट पर नाक रगड़ता है और कभी अपनी आत्मा के मन्दिर में आतंकित होकर काँपता रहता है।"

"क्या किसी देवालय में मस्तक झुकाना, तथा महान आत्माओं का आदर करना अथवा पश्चाताप के आंसू गिराना भी दोष है गुरूदेव !

" यह मैंने कब कहा, मेरा आशय समझने की चेष्टा करो। मैंने कहा है शक्ति के अभाव में मनुष्य को भटकना पड़ता है। भटकना दोष पूर्ण है। अपनी आत्मशक्ति को जाग्रत करके, अपने लक्ष्य को निर्धारित करके, संयम के साथ यदि मनुष्य कर्मरत हो जाये तो उसे किसी के पास जाने की आवश्यकता नहीं। महाभारत के एकलव्य का नाम तो सुना होगा, अपनी इच्छा शक्ति के बल पर ही अर्जुन से श्रेष्ठ धनुधारी वन बैठा

था—

"किन्तु उसको भी द्रोणाचार्य की शरण लेनी पड़ी थी! मूर्ति की प्रतिष्ठापन। की थी उसने।"

"पर द्रोण ने उसे दिया क्या था? यदि कर्म उसका साथी न होता, इच्छा शक्ति प्रबल न होती, उसका लक्ष्य निश्चित न होता तो क्या द्रोण के निषेध कर देने पर भी इतना कुछ पा सकता? जो गुरु दक्षिणा के रूप में दायें हाथ का अँगूठा माँग रहा था, क्या वह उसे धनुर्विद्या में पारंगत बनाना चाहता था?"

"पर श्रद्धा का पुनीत तत्व ही तो एकलव्य की प्रगति का एक मात्र आधार था गुरुदेव!"

"ठीक, ठीक। पर श्रद्धा कर्म से अलग कुछ भी नहीं, श्रद्धा कर्म और धर्म की आधार शिला है। श्रद्धेय में श्रद्धा का भाव धारण करने से पहले दृष्टि उसके कर्मों को पहिचानती है जिससे हम उस पर टकटकी लगा देते हैं। यह श्रद्धा हमें पुनः उसी कर्म की ओर प्रेरित करती है विमुख नहीं। इसके विपरीत जो व्यक्ति कर्म को भुलाकर महात्माओं के चरणों या देवालयों की चौखट पर अपना मस्तक रगड़ते हैं उन्हें कुछ भी नहीं मिल पाता। निरन्तर घटकाव में उसका विश्वास धोखा बन जाता है, और उसकी श्रद्धा दिखावा रह जाती है। स्वार्थ का चश्मा चढ़ाकर दूसरों के ठगने को प्रयास में वह स्वयं ठगा जाता है और जब असफलताओं को चोट से उसका हृदय मग्न हो जाता है तो आतंकित होकर वह रो उठता है किसी सम्बल की तलाश में।"

गुरुदेव का एक-एक शब्द सत्य का प्रस्फुटन कर रहा था, लगता था ज्ञान साकार होने लगा हो! धर्म का जैसा व्यवहारिक रूप वे प्रस्तुत कर रहे थे, अन्धविश्वास की एक भी गाँठ

उसमें नहीं थी। फिर भी शास्त्रों की मीमांस के कुछ स्वर मेरे मस्तिष्क में गूंजने लगे।—मैंने कहा—

"किन्तु सुना है गुरुदेव कि कर्म करने में मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है, मनुष्य प्रस्ताव रखता है और परमात्मा उन्हें स्थगित करता है, मनुष्य अपनी इच्छा से स्वतन्त्र यदि कुछ करना चाहे तो कुछ कर सकता है?"

क्षण भर को गुरुदेव के मस्तक में रेखाएँ उभरी और विलीन होगई, वे मुस्करा पड़े—

"अरे तर्कशील। यह तो तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है, किन्तु इस विषय में मैं तुमसे सहमत नहीं। सुनो जैसे तुम स्थगित करने वाला कहते हो वह तुमसे अन्य कौन है? कोई भी नहीं। किन्तु यह तुम समझ न सकोगे यह तो तुम्हें वेदान्तियों की अटकल और स्वयं का अहं दिखलाई पड़ेगा।

लल्ला! जिसे मनुष्य परमात्मा कहता हैं, विद्वानों ने उसे अकर्त्ता ही माना है. भला वह तुम्हारा स्थगन, संचालन की क्रिया क्यों करने लगा? मनुष्य अपने कर्म का स्वयं ही निर्णायक हैं और स्वयं ही कर्त्ता। कर्म से ही नए जन्म का निर्माण होता है, कर्म पुनर्जन्म या मोक्ष की आधार शिला है जिसमें संस्कारों का विशेष महत्त्व है, संस्कार चित्त की सृष्टि है और चित्त की व्यवस्था स्वय हम और तुम ही करते हैं चित्त अव्यवस्थित होने पर हम असफल हो जाते हैं, संस्कार छिटक जाते हैं, मन और कर्म का तारतम्य बिगड़ जाता हैं बात यह है मनुष्य तब बाहर की ओर देखता है तो भीतर देखने की सूक्ष्म दृष्टि को विकसित नहीं कर पाता भीतर देखने पर ही मनकी अवस्था में सुख और दुःख दिखलाई पड़ते हैं। पता चलता है सुख दुःख मन के विकार मात्र हैं। सुख दुःख से तटस्थ निर्द्वन्द्व होकर हम यदि विचार करें तो दीख पड़ेगा—जगत कुछ नहीं एक

क्रीड़ास्थल है जहाँ स्वयंभू प्रभू अपनी क्रीड़ा के लिए सृष्टि की सर्जनाकार क्रीड़ा के साथियों को खोज खोज कर, क्रीड़ाएं कर रहे हैं। जो इनके सम्पर्क में आता है वह उन जैसा ही हो जाता है और एक नई सृष्टि की सर्जना करने लगता है। जो दूर भागने की चेष्टा करता है स्वयं क्रीड़ा की सामग्री खिलौना मात्र बनकर रह जाता है। तमाशा करने वाला ही तमाशा बन जाता है।

नृत्यकार नृत्य करता है वहाँ उसके मन में विभिन्न भावों की सृष्टि होती है, जिसके अनुरूप वह शरीर को मुद्राओं में ढालता है और अपने ही अंगों को मटकाता भटकता देखकर मुस्करा पड़ता है। तमाशा भी करता है तमाशा भी बनता है किन्तु ज़रा सा संतुलन बिगड़ते ही उसकी कला विकृत हो जाती है। व्यथा घेर लेती है। व्यथा से आकुल वह भावलुप्त हो जाता है, मुद्राएं बिगड़ जाती है। तमाशा भूल जाता है और अपने स्थान से गिर कर उपहास का पात्र बन जाता है, और अनन्त आनन्द में मग्न अन्य नर्तकों की ठोकरों का शिकार इधर उधर भटकता रहता है। प्रलाप करता है। उठने की चेष्टा में तरसाई हुई आँखों से दूसरों की ओर देखने लगता है और तब तक देखता रहता है जब तक बाह्य अवस्था को भूलकर अन्तर्मुखी हो आनन्द में मग्न नही हो जाता। मन सम्भला, वह उठा और शरीर की मुद्राएं उसकी इच्छा के अनुरूप ढलने लगती हैं, कृष्ण की विनिन्दित वेणु के स्वर उसने प्राणों की पुकार बन जाते हैं और सम्पूर्ण जगत क्रीड़ा स्थल-व्रज धाम बन जाता है।

वह अनेकों को साथ लेकर रास निमग्न जिस ताल पर पग बढाता है सम्पूर्ण जगत उसी ओर बढ़ चलता है। जिस सम पर वह यति या विराम देता है सम्पूर्ण जगत गतिहीन और स्थिर हो जाता है। पर न तो वह रुकता है न जगत ही रुकता है।

उसकी क्रिया ही गतिशीलता में है, गतिहीन होने में नहीं। गतिहीन होते ही वह ताल से पृथक पड़ जाता है। या तो समाप्त, लय, विलय, प्रलय, निलय, या पीड़ा का प्रताड़न।

किसी संगीतज्ञ को सुना है जो अपने स्वरों में डूबा हुआ अपने स्वरों में मस्त रहता है, न जाने वह कितने स्वरों का निर्माण करता है अपने लिए। पर संसार उसे देखकर मुग्ध हो उठता है वह अपने स्वरों का प्रेरक स्वयं ही है तो है और ऐसा कुछ कर दिखाता है जो बाह्य जगत में सम्भव नहीं।

परमात्मा तो वही देता है लल्ला! जो हम चाहते हैं ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां तथैव भजाम्यऽम्' --

सुनते सुनते मुझे ऐसा लगने लगा जैसे गुरुदेव मुझे लेकर किसी ऊंचे स्थान पर उड़ चले हों पर मेरा आंचल नीचे ही किसी झाड़ी में उलझ कर अटक गया हो, जिससे मेरी गति त्रिशकु जैसी हो गई। मैंने अपना मस्तक पकड़ कर सिर को जोर से दबाया बालों को नोचने से रेका प्रयत्न करने लगा, सिर को झटका। गुरुदेव मेरी असहाय अवस्था देख उठाकर हंस पड़े--

"अरे तू तो प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानने वाला है, तू ऐसे क्या समझेगा, किंतु फिर भी तेरे जिज्ञासु मन से मुझे उच्च संस्कारों की गन्ध आ रही है, फिर तूने मुझे गुरु शब्द म अभिषिक्त भी तो किया है, मैं तुझे निश्चय ही शान्त करूंगा, बोल तेरे मन में क्या है?

"कुछ नहीं प्रश्न के कंटकों में मन का पल्लू उलझ गया··· ·····।"

"अरे कविता कर रहा है, या प्रश्न···? यदि तेरे मन का अन्धकार न मिटाया तो मैं गुरु ही क्या हुआ।"

"स्वाभाविक रूप से एक प्रश्न उठता है गुरुदेव ! वह गिरता ही क्यों है ? जबकि आपके शब्दों में वह स्वयंभू होता है।"

"रूप पर मुग्ध होकर, शरीर की चेष्टाओं में अतिशय डूब कर, प्रदर्शन में उलझ कर मन का तारतम्य खोकर, तोल से अलग हो जाता है और सुख दु.ख की अनुभूतियों का विश्लेषण करने लगता है केन्द्र को छोड़ कर बाहरी जगत में खो जाता है। यदि गिरी हुई अवस्था में भी केन्द्र से तार न टूटे तो भी एक नई मुद्रा का निर्माण कर सकता है।

रामलीला तो देखी होगी रे तूने ? एक स्त्री के वियोग में राम का करुण विलाप भी देखा होगा, पर राम फिर भी राम बने रहे, मजनू नहीं। रावण को मारकर भी अग्नि परीक्षा से पूर्व सीता के लौटने पर सहसा कण्ठ नहीं लगा लिया रूप को। और भक्त रावण ने भी बिना परम धाम पाये छुआ नहीं छाया को। दोनों ही अमर हो गये, नाचते रहे ताल पर। रण छोड़ कृष्ण तो ऐसे नाचे कि जड़ और चेतन भी नाचने लगे जैसे चुम्बक के साथ लोहे के सहस्रों परमाणु।

लल्ला ! दुःखी वह होता है जो अपने को भिन्न मानने लगता है और पराश्रित होकर कामना में लिप्त हो जाता है। आशा तथा आकांक्षा की पूर्ति या अपूर्ति उसमें सुख-दुःख, भय, क्रोध, ईर्ष्या आदि का संचारण करा चित्त को विकृत एव संस्कारों से दूषित कर देती है।"

"एक प्रश्न और है गुरुदेव ! आपने कहा—कर्म से नये जन्म का निर्माण होता है और कर्म संस्कारों पर आधारित है तब तो इस जन्म में हमारे पिछले संस्कार भी रहते होंगे फिर तो कर्म, अवस्था और सस्कार में समन्वय रहना चाहिये, पर देखने में कुछ विपरीत-सा मिलता है हर पुण्यशील और

सुकर्मी अत्यन्त विपन्न, और पापी तथा दुष्कर्मी अत्यन्त सम्पन्न

दिखलाई पड़ते हैं।

"ऐसा कहा......? तू सपने को सत्य सत्य समझ बैठा, झाँक कर देखा है तूने उनके चित्त में ? कैसे देखेगा, चर्म चक्षु ही है न तेरे पास तो........ फिर देखने अभिलाषी में तुझे दिखलाऊँगा।"

मैं अपने सामने पर विचार करने लगा। "वाह कितने संस्कार बनते बिगड़ते हैं हम में........ क्या सच और क्या झूठ..........।"

तभी किसी कार के हार्न की आवाज ने हमारी वातचीत में व्याघात उत्पन्न कर दिया। एक शिष्य महोदय आये जिसने कंधे पर लटके अंगोछे से हाथ पोंछते हुये, खाते-खाते मुँह से लगे लड्डू के दाने को पल्लू से पोंछकर एक हाथ से सर में खुजलाते हुये दूसरे से दाढी को लम्बी करते हुये बदहवासी में ठोकर खाकर गिरने से बचते-बचते कहा––

गुरुजी कनकौआ ––...नाँही–– नाही......कलकत्ता वाला सेठ बाबू आय रह्यो है, "सेवन की डलिया भरकर...... ।" नही मैं और न गुरुदेव अपनी हँसी रोक सके।

गुरुदेव ने कहा––

"तो तू इतना खुश क्यों हैं रे !" शिष्य सहम गया और मेरे मुँह से धीरे से निकला––

"सेवन की डलिया देखिकै"––

मेरी आंखों से आँखें मिलते ही गुरुदेव खिलखिला कर हँस पड़े, वह ठगा सा देखता हुआ कुछ न समझ सकने पर तोंद खुजलाने लगा।

सारा वातावरण ही बदल गया जैसे अन्तरिक्ष के यात्री चन्द्रयान से उतरकर पुनः धरती पर आ उतरे हों। गुरुदेव ने शिष्य को आदेश दिया––

"माधो, तू सेठ जी का आदर सत्कार कर, उनके निवास का प्रबन्ध कर हम दोनों को बाहर जाना है।"

अन्धा क्या चाहे दो आँखें, माधो एकाएक प्रसन्नता से खिल उठा। हाथों के पन्जे ऐसी आकृति बनाने लगे जैसे कोई क्रिकेट प्लेयर क्रिकेट मैच की तैयारी कर रहा है। जीभ कई बार होठों पर नाच दिखाकर अन्दर ही खिसक गयी।

गुरुदेव ने मुझसे कहा—

"उठो लल्ला तुम्हारा प्रश्न अभी अधूरा है, यहां बाधा पड़ेगी, हम और तुम जंगल में चलते हैं।" फिर कुछ सोचते हुये पूछा—

"भूख तो नहीं लग रही ?"

पास रक्खे हुये लड्डुओं की ओर देखकर मेरी ओर प्रश्नात्मक मुद्रा में देखा—"इच्छा है या नहीं।" "गुरुदेव ये माधो के लिये······।" मेरे इतना कहने की देर थी कि माधव ने झपटकर लड्डू उठा लिये और चलते हुये कहा—"अच्छा गुरुदेव ! हम चलते हैं, सेठ का प्रबन्ध करिबे को ?" हम फिर हँस पड़े और हंसते-हंसते उठ गये।

बड़ी विचित्र बात थी या तो मुझे शरीर का आभास नहीं रहा था या शरीर में चोट नहीं थी चोट का भ्रम ही रहा होगा। अब पूर्ण स्वस्थता का अनुभव कर रहा था। दूर से शान्तः दूध का गिलास हाथ में लिये हुये सात्विकता एवं सौन्दर्य की दयामयी प्रति मूर्ति के सतान आखड़ी हुई।. एक क्षण के लिये उभरे हुये वक्ष पर बिखरी हुई केश राशि की घटा को देखकर मन मयूर ने फूंकना चाहा, तभी मन पर गुरुदेव के शब्दों की थाप पड़ी—

"न इच्छा हो तो रहने दो लल्ला ?"

मैं मन ही मन लजा गया। गुरुदेव ने शान्ता से कहा—"साध्वी! मैं जा रहा हूं, तुम्हारी पति मेरे साथ हैं कह नहीं सकता कब लौटूं तुम मानुदेव से कहना, मेरी अनुपस्थिति में आश्रम का भार सम्भाले।"

मेरा मन उनके साथ बन्धा हुआ था। एक अनुचर सैनिक की भाँति मैं अनुगमन कर रहा था। वह मुड़े, मैं मुड़ा, वह ठिठके मैं रुका, गुरुदेव ने शान्ता को भी टटोला—"पति की परिचर्या में कुछ समय देना चाहो तो इन्हें यहीं छोड़ दूं देवि।"

मेरे मन के साथ ही शान्ता के मुख से भी 'ना' ही निकला, "आपके सङ्ग से अधिक मेरा सङ्ग क्या शान्ति देगा इन्हें गुरुदेव मैं तो इनके जीवन के कल्याण की अभिलाषिणी हैं गुरूदेव! गुरूदेव ने कमण्डल उठाया एक लाठी का आश्रय लेकर मैं उनके पीछे चल पड़ा।

हम शीघ्रता से बाहर चले गये। जंगल में पहुंच गये। तब तक चलते रहे जब तक कि ऊबड़ खावड़ जमीन से आगे पत्थर की विशाल चट्टान ने आगे मार्ग रोक लिया, पास ही कल-कल छल-छल करता हुआ दूध की धार के सम्मान पहाड़ी श्रोत वह रहा था। हरे वृक्षों की सघन छाया में पक्षियों का कुल कुल कल २ व संगीत की रूनझुन सा, रासमय गोपिकाओं के बिछुओं की याद करा रहा था। गुरूदेव बैठ गया तो भी थकावट का नाम नहीं था।

आस्ता चल गामी सूर्य का लाल—लाल प्रकाश गुरुदेव के मुख मन्डल पर प्रकाश चक्र का निर्माण कर रहा था, मुझे लगा सहस्त्रों वृक्षों की पंक्ति वृद्ध सेना के वीच, पत्थर की शिला का रथ [illegible] स्वयं कृष्ण गुरुदेव [illegible] को कोई विराट रूप दिखलाने के लिये प्रस्तुत हो गये हैं।

मैं उन्हें एक-एक स्तब्ध देखता रहा, मन बन्धन गया। संसार चक्र ठहरा-सा लगा आस-पास प्रकाश के अतिरिक्त कुछ न सुनाई पड़ा, यह प्रकाश लाल होता चला गया एक चक्र के रूप में घूमने लगा जिससे मुझे अपना सारा शरीर ही एकाकार होकर घूमता जान पड़ा, मै उसमें समाता चला गया। मेरे पैरों के नीचे कुछ भी नहीं है और मैं अतल जल की गहराई में धीरे-धीरे उतरा जा रहा हूं। सहसा हजरों बल्वों का-सा प्रकाश एक ही स्थान पर आकर केन्द्रित हो गया मुझे जो दृश्य देखने को मिला उससे मैं चकित रह गया——

जैसे एकाएक हम आश्रम आ गये हैं हमे सब कुछ साफ दिखलाई पड़ रहा है किन्तु हम दूसरो को दिखलाई नहीं पड़ रहे हैं।

आश्रम के एक कक्ष में बैठे हुये सेठ दिखलाई पड़े, वह मुझे परिचित सा लगे, पर उन्हें पहिचान कर भी मे अपना न कह सका। वह चिन्ता मग्न सिर झुकाये कुछ सोच रहे थे, गुरुदेव ने कहा, आओ लल्ला, "इनके भीतर चलें, देखते-देखते हम धनाढ्य के मन में प्रवेश कर गये। देखा बाहर से धनाढ्य लगने वाली वह व्यक्ति अन्दर से सर्वथा उजाड़ हैं, चारों ओर से बरसते हुये पत्थरों से लहूलुहान पिशाचिनिया के बीच आतंकित पगला वह विह्वल हो रहा है।

उसने अपनी कन्या और प्यारे पुत्र को एक राक्षसी - स्त्री के प्रेम जाल में फंस कर घर से निकाल दिया था जिसने आसुओं से भरे चेहरे बार-बार उसकी कल्पना में उतर कर उसे मरणान्तक पीड़ा पहुंचा रहे हैं किन्तु काम, क्रोध और दम्भ उसे मरने नहीं देते। क्षमा आना चाहती है पर भय, लज्जा और अहंकार उसके मुख पर हाथ रखकर खड़े हो जाते हैं, स्वार्थ उसके गले में फंदा डाल लेता है, उसका दम घुटने

लगता है, वह मरना चाहता है पर मर नहीं पाता, मृत्यु उस पर हँसने लगती है, परलोक का ध्यान उसके सामने पापों का मूर्त रूप लेकर खड़ा हो जाता है।

उसके द्वारा शोषित सैंकड़ों नर कंकाल दुर्गन्ध भरे शरीर लेकर भयंकर चीत्कार करते हुये उसको घेर कर उसके कण्ठ की ओर हाथ बढ़ाने लगते हैं। इस भयंकर दृश्य से मैं भी भयाक्रान्त हो उठा, गुरुदेव ने कहा—"अरे यह क्या लल्ला ! यह तो तुम्हारा सुखी धनाढ्य है, तुम तो इसे परम सुखी मान रहे थे न ? देखा तुमने बाहर का लखपती अन्दर क्या भोग रहा है ? इस आश्रम में यह अपने दुःख की औषधि खोजने आया है। पर यहाँ भी व्यापार ही करता है। बाबा को धन से खरीदना चाहता है. शान्ति का मोल कर रहा है पगला ? शान्ति इसके सामने है पर पहिचान नहीं पाता आओ बाहर देखें।"

बाहर निकल कर देखा —

शान्ता कुछ फल लिये सेठ के सामने खड़ी थी, दोनों एक दूसरे को देख चौंक पड़े। आश्चर्य से विह्वल सेठ ने कहा—

"शान्ता तुम यहाँ ?" शान्ता मौन थी, जैसे बीती स्मृतियाँ उसकी आँखों में आकर ठहर गई हो। अपने को संयत करने की चेष्टा में दो बूंदे उसकी आँखों से टपक पड़ी, किसी प्रकार हव बोली, "लीजिये फल, मैं आश्रम की ओर से आपका स्वागत करती हूं, आप कुछ दुःखी दिखलाई पड़ते हैं. आप कौन हैं ? धनाढ्य की पलकें झुक गई वह लज्जा से गड़ा जा रहा था। वह कातर स्वर में फुसफुसाया—

"मुझे नहीं पहिचाना बेटी ?" शान्ता के मुख पर आवेग के चिह्न थे तो भी उसने नियंत्रित स्वर में कहा — 'नहीं......।"

गुरुदेव ने मुझे कहा, "आओ पुत्र शान्ता के मन में प्रवेश करें।"

शान्ता के मन में प्रवेश करने पर अनन्त शांति से परिपूर्ण ममता का सुवासित वातावरण दिखलाई पड़ा। जहाँ आदर्श के उच्च शिखर से करुणा की अजस्र धारा निकलकर कर्तव्य के मार्ग पर प्रवाहित हो रही थी। धारा के मार्ग में बीते-बीते दिनों की स्मृतियाँ कभी, विकराल चट्टान और कभी कंटीली झाड़ियाँ बन कर खड़ी होतीं पर प्रेम का आवेग सब कुछ बहाकर ले जाता। कुछ चित्र शान्ता के मन में भी उभर रहे थे—

सेठ शांता का धनी मानी बाप था, जिसके दो बच्चे थे शान्ता और गोपाल जिनकी, ममतामयी माँ वत्सलता की प्रति मूर्ति थी, जिसे नौकरों से लेकर घर का बड़े से बड़ा प्रत्येक व्यक्ति देवी के रूप में देखा करता था, जिसके सम्पर्क में प्यार और करुणा के फूल खिलते थे, जिसका जीवन सात्विक प्रेम और दया से लबालब भरा हुआ था। माँ के निधन पर अपार धनी पिता मार्ग से भटक गया।

सुरा और सुन्दरी के साथ मित्रों के बीच दिल बहलाने लगा। नित्य प्रति के क्लब जीवन में एक रूपसी से साक्षात्कार हुआ, पुनर्विवाह होगया, वासना के साम्राज्य में बालक विद्रोह दिखलाई पड़ने लगे।

कलह के परिणाम स्वरूप गोपाल पर झूठे आरोप लगे। यहाँ तक एक दिन अनाथ बालक को घर से निष्कासित किया गया, शान्ता भाई से लिपटी, रोई, चिमटी पर रोक न सकी उसे घर से बाहर निकाल दिया गया, मां और बाप की टेढ़ी दृष्टि किंचित भी बल न छोड़ पाई। ममता की अधूरी प्यास लिये वह घर से दूर चला गया और स्वयं पुरुषार्थ के बल पर शिक्षा अर्जित कर फौज में भरती होकर एक दिन मेजर बन गया।

फिर प्यार के वे दिन आये जब शान्ता का मुझ से मिलन हुआ प्रेम विवाह और उसका परिणाम जो अब तक हुआ सब चित्र उसके मन पर अंकित हो रहे थे, जैसे सैकड़ों भावनाओं की धारायें एक साथ मिलकर भयंकर प्रवाह उमड़ पड़ा हो पर वह सयंम के किनारों में वह ज्वार उठकर भी बाहर न निकल पाया। पीड़ा, पीड़ा में सुख, प्रेम, में शान्ति, कटुता, में भो रस, प्राया, प्राणों प्राणों में दया; मन, में स्वाभिमान; कष्ट, दूसरे के किये अपने लिये और कष्टों में भी मधुरता वाह रे शान्ता, जीवन का कैसा अद्भुत नियोजन था, तिसपर गुरुदेव का वरदहस्त लगा जैसे सैकड़ों देवता वन्दन रत हों।

गुरुदेव ने मेरा हाथ पकड़कर हिलाया—

"देखा तुमने कष्टमय जीवन का आनन्द ? देखा इस अभागी को क्या मिला है ? आओ बाहर चलें —

बाहर आकर देखा, सेठ घुटनों पर झुक गये हैं, हाथ ऊपर उठाकर शान्ता से दया और शान्ति की भीख माँग रहे हैं किन्तु उसी समय शान्ति की नई माँ, उनकी नवोदा, ने प्रवेश किया मैं देखकर चकित रह गया—देखकर उसका परिधान जो उसकी नग्नता को उजागर कर रहा था, प्रसाधनो से आवश्यक रूप में कृतिम बनाया गया शरीर, वह स्वयं को सम्भालने में असमर्थ थी, मद्यप की भाँति डगमगाती नशीले नयनों से वह शान्ता को देख कर ठिठक जाती है और मद्यम की भाँति हाथ नचाकर चिल्ला उठती है, " यह .... क्या .... हो ऽ ऽ ऽ रहा है। कौन से नये स्वय सजाये जा रहा है ?"

वृद्ध सेठ तमतमा उठे वह चाहकर भी कुछ कहना नहीं चाहते। शान्ता बाहर निकल गई। गुरुदेव ने कहा—

"आओ पुत्र क्या उसका अन्तर्गत नही देखोगे।"

"नहीं गुरुदेव ! इसकी बाह्य चेष्टाओं में ही चरित्र प्रति-ध्वनित हो रहा हो।

गुरुदेव मुस्काराने लगे—"नहीं ! तुम फिर भूल कर रहे हो आओ इसके मन में प्रवेश करके देखें।

शान्ता की नई माँ के मन में प्रवेश करके देखा—

"उसके मन में जैसे एक भयानक रेगिस्तान उमड़ा रहा था, जहाँ, भूख, प्यास और वासना विकराल मुँह बाये खड़ी थी। तपते हुये रेतीले टीलों पर ऐश्वर्य के पानी की बूंदें सुलभ कर रह जाती थी। इच्छा के तूफान में उमड़कर धुन्ध ही धुन्ध फैलाने लगी पर प्यासी आत्मा भटकती ही रही।

समाज से प्रतिकार लाने की भावना के ऊँट पर सवार होकर वह भौतिक सुख की मृग तृष्णा में भटकती हुई वह अकिंचन, दौलत वालो ने जिसके सतीत्व का सौदा कर केवल प्यास ही प्यास दी है। उसी प्यास को मिटाने की चेष्टा में लगातार भटक रही है पर पानी की बून्द कहीं भी दिखलाई नहीं पड़ती इर्ष्या की आग और अधिक दहक उठी। धनी पति में जो मिल न पाया उसे इधर उधर खोजना चाहती है किन्तु प्यास नहीं मिटती आग और भड़कती गई है। जीवन प्यासे ओठों की भाँति सूखता जा रहा है। उसके चारों ओर प्यास ही प्यास है। मैं देखकर अचम्भित था, "हाय भी निर्दोष…… ……दामी……… नई माँ।

"आओ बाहर चलें !" गुरुदेव ने कहा— बाहर निकल कर देखा।

नई माँ धनाढ्य सेठ पर बरस रही थी —

"तुमने मेरे जीवन के साथ खिलवाड किया है, तुम मुझे

जीत नहीं सके, मैं तुमसे बदला लूँगी, तुम्हें तरसा तरसा कर मारूँगी। तुमने मुझे क्या दिया ? क्या कहूँ चाँदी के टुकड़ों

का ? सोने के गहनों का ? तुम खुद भूखे हो, रीते ...... बिल्कुल रीते, नँगे .... कगाल !!!" कहते-कहते वह पसीने से लथपथ हो गई. होठों पर पपड़ी जमने लगी । फिर कोई शीशी निकाल सूखे ओठों को तर करने के किए मुँह से लगा लिया । "तुम मेरे सामने रहे तो मैं पागल हो जाऊँगी ।" कहकर वह बाहर निकल गई । सेठ ने माथा पीट लिया ।

गुरुदेव ने कहा—'आओ इसके साथ बाहर चलें, यह प्यास क्या गुल खिलाती है ।"

दूर सामने आम की छाँव में, उत्तम अंगों वाला एक तेजस्वी युवक समाधिस्थ अवस्था में बैठा हुआ था । नई माँ की दृष्टि उसके युवा शरीर को देख स्थिर हो गई, वह. देखती ही रह गई उसके दृढ़ अंगों और सुगठित शरीर को, देख कर उसकी साँसे तेजी से चलने लगी जैसे उसकी प्यास में उफान आ रहा हो । मैंने गुरुदेव से पूछा —

"कौन है यह तेजस्वी युवक जो तपस्या के तेजसे आलोकित सा दिखलाई पड़ता है ? '

गुरुदेव ने बतलाया 'यह भानुदेव हैं, मेरा शिष्य, किन्तु है यह भी प्यासा ।" मैं अचम्भे में ठगा सा खड़ा था—
"यह भी प्यासा ? '

गुरुदेव ने कहा, 'आओ देखें यह क्या कर रहा है ?

जगा - जैसे उसके सम्पूर्ण शरीरर में विद्युत की धारा प्रवाहित हो रही हो । सुप्तकुण्डलिनी विष से भरी साँपिन के समान फुफकार रही हो, किन्तु प्राण शक्ति की तरंग के अभाव में ब्रह्मज्ञान का द्वार खुला नहीं पाया । उसका चित्त व्याकुल था, वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये तड़प रहा था । उसने अथक प्रयत्न किया, उसकी तपस्या फुफकार मारकर

रह गई । उसका मन थका थका-सा दिखलाई पड़ने लगा, धीरे

धीरे वह निराशा की पकड़ में आता गया और हतोत्साहित होने लगा।

उसके मन का रस निचुड़ने लगा, वह हार सी मान बैठा, अनेक चित्र उसकी कल्पया में उभरने लगे, उसने देखा स्वर्ग--, विविध व्यञ्जन, देवाङ्गनाओं की क्रीड़ा, देवों का सोमपान, कल्प वृक्ष का दान, भरपूर ऐश्वर्य, अप्सराओं के नृत्य। देवता उसके स्वागत को उठ खड़े हुये, आदर से ऊँचा स्थान दिया, ताली बजते ही अप्सराओं का नृत्य प्रारम्भ हो गया, पेय प्रस्तुत किया गया उसने एक बार देवताओं को निहारा, सबने कहा,— "स्वीकार कीजिये मुनिवर! हमें कृतकृत्य कीजिये, यह सोमनाथ है, हम इससे आपका अभिषेक करते हैं?

"गर्व ने हाँ में हाँ मिलाई और तृष्णा ने मय आगे बढ़ाई, एक ही घूट में चषक खाली हो गया। इन्द्रिया चंचल हो उठीं और उनके देवता आनन्दित होने लगे, सब ठहाका मारकर हँस पड़े। अप्सरा ने गले में बाँहें डाल दी और तपस्वी उसकी आँखों में डूबने लगा। मेरा मन वितृष्णा से भर गया। गुरुदेव ने कहा —

"क्यों? देखा तुमने इस नीरस तपस्वी को? यह प्यास ही इसे ले डूबेगी। शक्ति पाकर भी यह अशक्त रह जायेगा। जहाँ इसका मन अटका है वहतो इसे अवश्य मिल जायेगा, पर जो प्राप्त होना था नहीं। तुम्हें कैसा लगता है, बोलो ठहरना चाहते हो, इस स्वर्ग में? अरे तुम तो मौन हो कुछ तो बोलो?"

मुझे एक झटका सा लगा और मैंने कहा—
"नहीं गुरुदेव।"

"तो आओ बाहर चलें।" गुरुदेव ने कहा।

बाहर देख कर चकित रह गया—

सचमुच नवोढा ने भानुदेव के गले में बाँहे डाल दी थी।

और इस स्पर्श सुख में तपस्वी की देह पुलकित हो उठी थी। मैंने आँखें बन्द करली, मेरे मुँह से निकला---

'बस बस······गुरुदेव !"

एकाएक भयंकर अन्धकार छा गया। वही लाल प्रकाश लौट आया जिसके साथ में ऊपर उठना चला आया। आँखें खोलकर देखा, "गुरुदेव मुस्कराकर कह रहे थे। "चलो लल्ला आश्रम लौट चलें, मैं नित्य कर्म से निपट आया, तुम यहाँ बैठ क्या सोचते रहे ?" सब कुछ जानते हुये भी वे बालकों की भाँति मुझसे प्रश्न कर रहे थे –

"क्यों क्या बात है, चिन्ता में खोए हुए हो, बोलो क्या बात है. मुझे कुछ देर हो गई, बैठे २ तुम्हें आलस्य आ गया होगा, कुछ मनोरंजन नहीं हुआ तुम्हारा ? शहर में तो सिनेमा विनेमा देख लेते होंगे, यहाँ तो कोई ऐसा साधन है नहीं।"

मैंने कहा—

"विनोद कर रहे हैं गुरुदेव ! या अबोध की बुद्धि पर व्यंग्य।" गुरुदेव ठठाकर हँस पड़े और आश्रम की ओर चल पड़े मैं बलात् उनका अनुकरण कर रहा था।

जब हम आश्रम में लौटे, तो समय बहुत हो चुका था। चारों ओर सन्नाटा था। बहुत से भक्त प्रतीक्षा करते हुये अपने स्थान पर बैठकर ही सो रहे थे। माधव खाया हुआ आधा सेव हाथ में लिये हुये ही जमीन में लुढ़क कर खर्राटे भर रहा था। धौंकनी की भाँति उसका पेट साँसों के साथ ऊपर नीचे हो रहा था। मूर्ति के पास बूढ़ी शान्ता समाधी की अवस्था में लीन थी। गुरुदेव के पधारते ही सब खड़े होगये. चरण वन्दन होने लगा। गुरुदेव ने शान्ता को खड़ा करके पूछा--- क्या आरती नहीं हुई।"

"नहीं गुरुदेव !

क्यों !"

"आपकी प्रतीक्षा में।"

"मेरी प्रतीक्षा में। मैंने तो कहला दिया था, कि मेरी अनुपस्थिति में भानुदेव इस आश्रम का भार सम्भालेगा, क्या मैं सदा धरती पर बैठा रहूंगा ? मेरे बाद क्या ऐसे ही आश्रम की दुर्दशा करा देंगे ? तुम सब.............. अच्छा जैसी तुम्हारी इच्छा—.. .... भानुदेव को बुलाओ।"

"भानुदेव आज नहीं मिले गुरुदेव !" सभी सहमते हुये भक्तजनों के बीच केवल शान्ता ने उत्तर दिया। गुरुदेव ने माधव को पुकारा, पर वह तो अब तक यहीं पड़ा था, शायद उसे होश नहीं था। उसने करवट ली और सेव को मुँह से लगा लिया। शान्ता ने आरती सजा कर गुरुदेव के हाथ में दे दी थी। आरती समाप्त होने पर सब यथा स्थान जाकर सो गये, माधो 'लड्डू लड्डू' बड़बड़ाता वहीं सोता रहा। मैं और शान्ता वहीं गुरुदेव के पास बैठे रहे, आज वे कुछ खिन्न मन किन्तु मौन थे। पूछने की कोई आवश्यकता नहीं थी, लगता था शान्ता भी किसी रहस्य को जानती है। हमें कई बार सोने की आज्ञा मिली पर हम उठ न सके। अन्त में गुरुदेव ने ही मौन तोड़ा —

"शान्ता मैं तो कल एकान्तवास के लिये चला जाऊँगा। शान्ता ने दबी हुई आवाज में कहा जैसा आप उचित समझें, हमें आज्ञा कीजिये गुरुदेव ! किन्तु आपकी अनुपस्थिति में साधना दुरूह है।"

उन्होंने ममता भरे शब्दों में कहा—

"तू तो जानती ही है बेटी। एकान्तवास मेरी साधना का एक अङ्ग है। इस क्रिया को मैं छोड़ नहीं सकता। मैंने तुझे निष्काम कर्म की राह दिखलाई है, तुझे सिद्धि भी मिली

है, प्रसन्न होकर कर्म में प्रवृत्त रह, मैं चाहता हूं व्यर्थ का मान छोड़ और अपने पति के साथ चली जा, प्रभु की कृपा और तेरी तपस्या के फल से इसका चित्त निर्मल हो चुका है, भ्रम जाल टूट चुका है।"

फिर मेरी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखते हुये कहा —

"क्यों लल्ला ! क्या मैं गलत कह रहा हूं।"

मेरे नेत्र पश्चाताप के कारण भीगने लगे थे। मैं क्षमा याचना की दृष्टि से कभी शान्ता को और कभी गुरुदेव को देख रहा था। या तो स्वयं ही या गुरुदेव की आज्ञा से शान्ता का मन द्रवित हो गया था।

वह मुस्कराई पर फिर उसने कसकर मेरे चरणों को पकड़ लिया जहाँ मोटे मोटे आंसुओं का स्पर्श मैंने अनुभव किया। मैंने कन्धे पकड़ कर शान्ता को उठाने की चेष्टा की। दोनों ने नंम्र होकर गुरुदेव के चरणारविन्दों पर अपने मस्तक झुका दिये उन्होंने दोनों को अत्यन्त प्यार से थपथपा कर वक्ष से लगा लिया —

"उठो मेरे बच्चों ! मैं जितना खिन्न था तुम्हारे सम्मिलन से उतना ही प्रसन्न हो गया। मैं नहीं कह सकता कब तक लौटूं। लौटूं या न भी लौटूं, तुम एक काम करना। जीवन को शुष्क न रखना इसमें सदा प्रेम की गंगा बहाते चलना। सुख दुःख कुछ नहीं, केवल मन की विकृतियाँ हैं, नीरस पुण्य और नीरस पाप दोनों ही दुःख दाई है, मनुष्य जिस चीज का चिन्तन करता है वही उसे मिलती है। पुण्य का केवल क्षणिक सुख और पाप केवल क्षणिक दुःख द्वन्द्व की सृष्टि करता है जिसमे आनन्द तिरोहित हो जाता है। रूखा सूखा पुण्य भी जीवन को नीरस और अहंकारी बना देता है। नीरस पाप भी जीवन में नरक की यन्त्रणा भर देता है। यह पुण्य और पाप का बन्धन

अज्ञात जनित संस्कारों का निर्माण करता है जो किसी भी क्षण मानसिक यन्त्रणा में घसीट कर जीवन को नारकीय बना देता है।

जीवन में प्रेम रस रहे तो विपद भी सम्पद बन जाये। इसका जितना भी प्रसार हो उतना ही सुख मिले, धरती में इसका बीज बोकर अगर सम्पूर्ण संसार को कृष्ण रूप में सेवा का भार ले लें, अद्भुत रस के अंग बन जायें, जहाँ कृष्ण-कृष्ण कहते २ कृष्णरूप ही हो जायें।

अच्छा सुनो! अगर तुम्हें कुछ कहना है तो अभी कहलो प्रातः मैं किसी को भी नहीं मिल पाऊँगा, यहाँ मेरी शान्ति भङ्ग हो रही है लगता है आश्रम में कोई दूषित प्रभाव प्रवेश कर गया है। समय की ताल पर जो भी नाचे, मैं क्यों बाधक बनूँ, मुझे तो अपनी ताल पर गतिशील रहना है, जो गिरेगा पछतायेगा।

मन्दिरों और धार्मिक संस्थानों में जब बुरा पैसा आने लगता है तो वहाँ की शान्ति भग हो जाती है, दुराचरण से अर्जित किये गये धन से निर्मित विशाल भवनों की छाँह में शुद्ध चरण कैसे पनप सकते है। इसी लिये प्राचीनकाल के ब्राह्मणों द्वारा अन्न या धन का अधिग्रहण बहुत सोच समझ कर किया जाता था, पर आज तो इसने अनेक पण्डितों और तपस्वियों की बुद्धि भृष्ट कर दी है साथ ही अकर्मण्यता आलस्य, और प्रमाद के रोगों ने उसे और भी जर्जर बना दिया है। पद्मासनों ने लोगों को निकम्मा बना दिया है।

अकर्मण्य मुल्ला, पादरी और पंडित पाप के अन्न पर पलने लगे हैं, विद्यालयों में लगे ईंट और पत्थर विद्यार्थियों के लिये उच्छृंखल वातावरण की सृष्टि कर रहे हैं। मेरी दृष्टि में इस

सबका कारण है दूषित अन्न और दूषित धन जिसके द्वारा

निरन्तर दूषित मन बनता जा रहा है और यह क्रम चला तो समाज नहीं बचेगा। तो भी मुझे आशा है, तुम जैसे संस्कार युक्त प्राणी इसे उबार ही लेंगे, दुःख के बादल छट जायेंगे।

× × × ×

आज मैं फिर एक बार खुश था; जितना शान्ता द्वारा प्रणय विवाह की स्वीकृति के दिन पर। सारी रात आनन्द की वर्षा होती रही, सम्पूर्ण कलुष धुल गये सुबह नींद खुली तो— आश्रम में कोलाहल मचा था, पता चला रात इतनी वर्षा हुई कि बरसाती नालों ने मिलकर बाढ़ का रूप ले लिया था। सुना मेले के बाद शाकुम्भरी की पहाड़ियों में यूं तो यह वर्षा प्रति वर्ष होती है, जिससे मेले का मल बहकर, स्थान पुनः पवित्र होकर शान्ति-वन बन जाता है पर न जाने इस बार किस कोप के कारण अथवा भौगर्भिक हलचल के कारण वर्षा समय से पूर्व ही आ धमकी।

गुरुदेव का कुछ पता न था, जंगल में जिस ओर वे शौचादि कर्म के लिये जाया करते थे, उस ओर से बरसात का पानी भयंकर जल प्रवाह के रुप में सैकड़ों, वृक्षों, झुन्ड लताओं, पत्थर की चट्टानों तथा अनेकानेक जीव शरीरों को बहाये दहाड़ता, गरजता, चला आ रहा था सब आंतकित और सशंकित थे, बच्चे बिलख रहे थे, मातायें अपने लालों को अंक से चिपटाये अत्यन्त दैन्य पूर्ण अवस्था में खड़ी आकाश से दया की भीख माँग रही थीं। पशु भी डकरा डकरा कर करुण क्रन्दन सा करते नजर आ रहे थे। निकलने का प्रयत्न करते हुये भी बरबस बहुत से प्रवाह में बहे जा रहे थे।

एकाएक शव के पास बैठकर करुण क्रन्दन करती हुई नई बहू को मैंने देखा, पत्थर की चट्टान पर हाथ पटक उन्होंने

चूड़ियाँ तोड़ दी थी, माथे का सिन्दूर पूंछ दिया गया था, बाल

बिखरे हुये और वस्त्र अस्त व्यस्त थे, तो भी उनकी आँखों में आँसुओं के स्थान पर प्राण रक्षा का ही भाव अधिक प्रबल था।

सुना, सेठ जी ने रातोंरात अपने वकील को बुलवा अपनी वसियत लिखवाते ही अपना दम तोड़ दिया था—वसियत में केवल लिखा था—"मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति के अधिकारी मेरा पुत्र गोपाल और मेरी पुत्री शान्ता है" वे घर की मर्यादा के अनुकूल मेरी पत्नी के जीवन यापन का व्यय वहन करें।"

वसियत देखकर मैंने शांता और शांता ने मेरी ओर देखा, शांता की माँ का करुण विलाप चीत्कार में परिवर्तित हो गया। शायद शान्ता ने मेरे नेत्रों की भाषा पढ़ ली थी उसने वसीयत वकील के हाथों में लौटाते हुये कहा—"माँ के जीवन की रक्षा की जाये, एक के बाद दूसरे दुष्कर्म की पुनरावृत्ति मैं नहीं करना चाहती, पिता की वासना पूर्ण भूख का शिकार मेरी नई माँ भी तो किसी की कन्या है, क्या भूख की ज्वाला में भयंकर प्रतिशोध का घृत पड़ कर उनका जीवन नरक नहीं हो जायेगा? यदि यह सब मैंने होने दिया तो मैंने आश्रम में रहकर क्या सीखा? गोपाल अपनी इच्छा का स्वामी है, वह चाहे जो करे।"

नई माँ स्तम्भित रह गई कुछ बोल न सकी, लगातार शान्ता को देखती रही अबकि बार उसकी आंखों के आंसू निश्चय ही बरसों से जमा दुःख दर्द उभाड कर लाए थे। शान्ता के मुड़ते ही नई माँ उसके पैरों से लिपट गई, "मत जा मेरी बच्ची ······ रुक जा ······ मैं तेरे सहारे सारा जीवन काट दूंगी, तेरे पिता ने जो नहीं दिया वह तुझे पाकर पा जाऊंगी।'

शान्ता ने अत्यन्त संयत होकर पूर्ण व्यवहारिकता के साथ

कहा—"नहीं माँ, हम तुम एक साथ रहकर सुखी नहीं "रह

सकते, हमने जीवन का ध्येय कुछ और बनाया है।" शान्ता ने प्रश्न वाचक दृष्टि से मेरी ओर देखा मैंने तुरन्त ही स्वीकृति दी "निश्चय ही......।" और साथ ही मैंने नई माँ को आश्वस्त किया—"जब कभी आवश्यकता हो तो हमें याद कर लीजिये।"

सामने खड़ा भानुदेव अट्टहास कर रहा था, वह कभी अपने बालों को नोचता, कभी उठाकर दूर पत्थर फैंकता, कभी वृक्षों की डालों को पकड़ कर झूल जाता, कभी जल में घुमने की चेष्टा करता, कभी चिल्ला पड़ता—"मैं......पापी हूँ, ढोंगी हूं,......धूर्त हूं...... दोषी हूँ......।" मुझे मार डालों... मैं अपने पिता-समान गुरु को खा गया हूं... ।" और सहसा... फिरअट्टहास कर उठता। लोग भाँति भाँति से टीका टिप्पणी कर रहे थे......"वह पागल हो गया...... बेचारा...... बड़ा तपस्वी था......साधक था — — अपने गुरु के बाढ़ में बह जाने की आशंका से पागल हो गया ऐसा योग्य शिष्य किसी को भाग्य से ही मिलता है— — — ।" दूर आकाश में एकाएक बहुत तेज बिजली चमकी जिसकी गड़गड़ाहट से सारा जंगल दहाड़ उठा — —लगा जैसे पास ही कहीं धरती का सीना फट गया हो।"

सब भागने लगे थे, हम भी अपनी राह लगे। नई माँ का सामान मोटर में लद चुका था वह वकील के साथ कार में बैठ कर चली गई थी।

× × × ×

वर्षा थम गई थी, सूर्य निकल आया, जल धाराओं के प्रवाह शान्त हो रहे थे। मैं और शान्ता जब बीहड़ जंगलों से गुजर रहे थे; एक कराहट की आवाज सुनाई दी। हमने इधर-उधर देखा, एक स्थान पर स्रोत के प्रवाह में चट्टान से अटका हुआ किसी स्त्री का शरीर दिखलाई पड़ा। शान्ता उधर झुकी उसके पानी में घुसने से पहले ही मैंने बढ़कर हाथ दिया और उसको खींचकर जल बाहर से निकाला, बाहर निकलते-निकलते वह मूर्छित हो गई थी, शान्ता ने कहा, "अरे यह तो नूरी है जो कभी कभी आश्रम में फूल लेकर आया करती थी, उसकी आँखे सदैव भीड़ में कुछ खोजती रहती थी।"

मैंने देखा उसका शरीर आग से कई स्थान पर झुलस गया था, वस्त्र भी जले हुये थे। मेरी नजर उसके मुँह पर गई तो हक्का बक्का रह गया, आश्चर्य मिश्रित चीख निकल गई..............

..... "कौन ? मेरे स्वप्न की लवङ्गी ....हाँ उसकी शक्ल बिल्कुल लवङ्गी जैसी थी, शान्ता के नैंन आश्चर्य से फटे रह गये उसने पूछा—

"क्या कह रहे हैं आप ? यह तो नूरी है; जंगल के किसी कबीले की लड़की, आश्रम में कभी आया करती थी......मुझे बहुत प्यार करती है।"

हमारे प्रयत्न से जब उसे होश आया, उसके मुँह से कुछ शब्द फूट पड़े—"सलीम ... ... आ ....हाय.......कहाँ हो ... ... कहाँ ... ...सलीम .....सेतू ..... मेरे प्यारे सेतू ..... कहाँ हो .....मैं मर रहीं हूं तेरा बच्चा मेरी कोख में है .....इस अमानत को लेजा .....ताकि मैं चैन से मर सकूं' शायद वह भयंकर दर्द से कराह उठी थी।

शान्ता ने पूछा कौन है सेतू ? "मेरा ...सलीम ...यह मेरे प्यार का नाम ..।" वह बात पूर्ण न कर सकी दर्द—अत्यधिक

कष्टदाई हो रहा था वह पेट पकड़ कर चीख उठी "हाय अल्ला····· हाय अम्मा···।" शान्ता ने मुझे इशारा किया मैं चाक देकर दूर जाकर मुंह फिराकर बैठ गया, मैं केवल सुन रहा था, चिल्लाहट बढ़ती गई चीखें चढ़ती रही, बड़ी बेसब्री से इन्तजार करने के बाद—किसी नवजात शिशु की "क्वाह २ की आवाज से जंगल चहक उठा, शान्ता ने मुझे आवाज दी··· "जरा अपनी चादर इधर फैंकिये, मैंने चादर दी देखा नूरी आंख पथल रही थी···उसने शान्ता का हाथ छाती पर रखकर भीचते हुये कहा—

"बहन··· ·· मैं मर रही हूं ·· मेरा बच्चा ···।" उसने अपने गले से खींच कर लोकेट निकाला और शान्ता के हाथ पर रखते हुये कहा—

इसको बच्चे को पहना····· देना, इसमें उनका······ सलीम ··· का सेतू का फोटू है····· उन्हें बच्चा ······ सौंप··· देना···।" शान्ता ने तसल्ली दी—"घबराओ नहीं····· नूरी··· ····· तुम अच्छी हो जाओगी, हम तुम्हारे साथ हैं।"

नूरी बीच में ही बात काटकर वितृष्णा से हँसी········· ·····उसने निराशा भरे स्वर में कुछ खाँसते हुये रुक २ कर ······· कहा,····· "झूठी तसल्ली मत दो·· बहिन··।"

शान्ता ने पूछा—"यह हालत कैसे हुई।" "मेरे मंगेतर दिलावर खान ने····· बाबा ने ··· मैंने गुनाह किया था······ प्यार ···· किया था····· सारे कबीले ने··· ·· मिलकर······ हाय ·········।"

एकाएक बहुत जोर से चिल्ला पड़ी. उसकी सांसे तेज हो गई जैसे निर्वाणोन्मुख दीप शिखा अन्तिम बार मिट जाने के लिये एक बार फिर भड़की हो·····। मैं उसके ऊपर झुका हुआ था मुझे देखकर कहा—

"आ गये..........तुम .....आ गये..... सेतू....... मेरे सलीम .....लो.......सम्भालो......।"

और उठने की चेष्टा में, भरपूर शक्ति लगाते हुये उसने मेरे कन्धों को पकड़ कर उठना चाहा..... मैं भय से पीछे हट गया और वह, "तु तु...तुम भी तुम भी मुझसे दूर...... तुम्हारा बच्चा...सलीम सली...सेतू ऽ ऽ ऽ अच्छा फिर कयामत के बाद अल... विदा ..." कह कर एक ओर को लुढक गई ...।"

नारी सुलभ करुणा से द्रवित हो शान्ता भी सहज ही सिसक पड़ी, मेरी आँखों में भी पुरुष गर्व तरला उठा... मैं सोचने लगा।

"आखिर क्या माया है... ...मेरे सपने की लवङ्गी से इसकी आकृति हूबहू मिलती है, क्या सपने सच्चे होते हैं? क्या सपनों की भी कोई दुनियाँ है? क्या हम एक ही नहीं अनेक रूपों में विचरण करते हैं? क्या हमारी जागृति भी सपनों का ही संसार है? सोचता-सोचता मन ही मन योग वशिष्ठ के पन्ने उलटने लगा।

शान्ता ने झकझोरा तो मैं चौंका—"आओ नूरी को दफ़ना दें, एक गढ्ढे में नूरी का शव रखकर कुछ कँकड़ पत्थर और गीली मिट्टी से उसे ढाँप दिया; पर वह लवङ्गी बन कर मेरे मस्तिष्क में जाग उठी। शान्ता ने बच्चे को उठाकर कहा—, चलो, परमात्मा ने इसकी ज़िम्मेदारी हमें सौंप कर दिल लगाने के लिए एक खिलौना भेंट किया है, शाकम्भरी के इस मेले में स्वयं भगवती हमारी गोद में आ बैठी है।" यह सुनकर मेरे मस्तिष्क में लवङ्गी का दिव्य रूप कौंध उठा, मैंने लवङ्गी नूरी के तन से जन्मने वाली इस कन्या का नाम तन्वंगी रख दिया शान्ता को यह नाम बहुत पसन्द आया,......वह

बच्चे से प्यार के साथ किल्लोल करती हुई चिल्ला पड़ी—

"तनु…तनु…तनु तनू……तन्वंगी ऽ ऽ ऽ………।"

× × × ×

"सभ्यता आदि चरण से बीसवीं शताब्दी के विकास युग में पग रखते रखते मानव समाज ने न जाने कितने रूप बदले हैं, पत्थर के युग से स्टील के युग तक सम्पूर्ण आविष्कारों की तो गणना भी कठिन है प्रकृत से अधुनातन संस्कृत युग तक आते-आते मातृ सत्ताक और पितृ सत्ताक प्रणालियों को पार करता हुआ मानवता के किस उच्च शिखर को छूने लगा विश्लेषण करना भी अत्यन्त कठिन है, किन्तु यह कहना अत्युक्ति न होगी कि मानव अपने संस्कारों में जो अरबों वर्ष पूर्व था वह अपनी विकसित अवस्था में भी है बस नये रूप, नये आवरण और नये फैशन में ढक कर स्वयं को धोखा देने का प्रयत्न अवश्य करता है।

इन्सान २ से लड़ा एक दूसरे ने एक दूसरे को नीचे गिराया, कबीले कबीलों से लड़े एक ने दूसरे को दास बनाया, राष्ट्र-राष्ट्र से लड़े एक ने दूसरे को परतन्त्र बना शोषण का जाल बिछाया; कितने अवतार, कितने पैगम्बर, कितने विचारक और समाज सुधारक हुये किन्तु उसने किसी की नहीं सुनी। कभी बहुरूप के लिये लड़ा, कभी कंचन के लिए और कभी भूमि के टुकड़ों के लिए, इसके अतिरिक्त बहुत सी लड़ाई तो उसने केवल खयालों के लिए लड़ी, धर्म के नाम पर, सम्प्रदाय के नाम पर। मत मतान्तरों और विभिन्न पदों के नाम पर भी वह लड़ता रहा, वह सुख के लिए पापड़ बेलता रहा पर सुख उसे न मिला क्योंकि सुख सदैव प्रकाश की भाँति दुःख के

अन्धकार से घिरा रहता है, आज भी वह उसी की खोज में कस्तूरी के मृग की भाँति दौड़ रहा है, मोहासक्त त्याग और प्रेम से दूर।

मेरा भारत, 1947 में दो टुकड़ों में बँट गया, धर्म के नाम पर! कितना जन संहार हुआ कहा नहीं जा सकता। किन्तु पिशाचिनी राजनीति की खूनी प्यास न बुझ सकी। हम फिर भी लड़ते रहे, वैदिक युग से लेकर नेहरू के युग में प्रवेश करते करते आर्य द्रविड़, शैव वैष्णव, जैन, बौद्ध और वेदान्त आदि विभिन्न दर्शनों को लेकर, हिन्दु, मुस्लिम और क्रिस्तान विभिन्न सम्प्रदायों को लेकर, सगुण निर्गुण नाना पथों में उलझकर, आस्तिक और नास्तिकवाद की विभिन्न विचार धाराओं में पड़ कर। न जाने कितनी खूनी होलियाँ खेली गईं तो भी यह देर से भी दुरुस्त न आया क्योंकि राजनैतिक स्वार्थ और मनुष्य की व्यक्तिगत लालसाओं तथा वासनाओं ने सदैव अनुयायियों की पीठ में छुरा भोंका है, शान्ति के पुजारी क्रान्ति की माला लेकर विप्लव की आग में झुलसते रहे हैं।

क्रान्ति ने यदि सदाशय से एकता के सूत्र में आबद्ध हो परतन्त्रता की समाप्ति के लिये शान्ति का आह्वान किया तो परिणाम इतने सुन्दर निकले कि कश्मीर से लेकर कन्या कुमारी तक सम्पूर्ण देश भावनात्मक एकता में बन्ध गया, विश्व के लिये वन्दनीय, अनुकरणीय हो गया। मित्रों ने साधुवाद कहा। पर जब भी भेदभाव और विप्लवों की आग में घृणा, द्वेष और संघर्षों की ज्वालाएँ भड़की, शत्रु चढ़ आया, मित्रों ने धिक्कारा और परतन्त्रता जड़ जमा बैठी।

मित्रों, सहयोगियों, साथियों और देश की अमूल्य निधियों? आपने इस 'शान्ता कुञ्ज' में आपके योग और सहयोग की

अभ्यर्थना करता हुआ देश के सुदृढ़ भविष्य के निर्माण का आह्वान

करता हूं। १५ अगस्त का यह शुभ पर्व हमारे सम्पूर्ण मनो-मालिन्य और दैन्य को दूर कर हममें पवित्र मानवीय भावनाओं एवं मानव मात्र के लिये प्रेम का संचरण करें। आजादी के रजत जयन्ती वर्ष में मेरी पुत्री तन्वंगी का २० वां जन्म दिन भी जुड़ा है क्योंकि इसी के पालन पोषण का उत्तरदायित्व मुझे व्यक्तिगत साधना की अपेक्षा सामाजिक कल्याण के लिये अनुप्रेरित करता रहा। इसकी माता के नाम पर मैंने शैक्षिक संस्थान कहो या आश्रम जो कुछ भी "शान्ता कुञ्ज" की स्थापना की है जिसमें योग और सहयोग का नारा लगाकर विश्व प्रेम का पाठ पढ़ाने की चेष्टा की जाती है हम चाहते हैं हमारे साधक शिक्षार्थी किसी भी प्रकार के वैमनस्य से बचकर इसी प्रेम भावना का प्रसार करें यदि इसमें कुछ भी सफलता मिली तो हम स्वयं को कृतकृत्य समझेंगे।

इन शब्दों के साथ ही मैं उन लोगों को धन्यवाद देता हूं जिन्होंने धन देकर निर्माण कार्य में सहयोग दिया। परमात्मा से प्रार्थना है कि इनका धन अप्रत्यक्ष रूप से हमारे विकास का साधक हो, अगर यह ईमानदारी से कमाया हुआ होगा तो निश्चय ही हमारी आस्था और विश्वास का पलड़ा भारी रहेगा।'

यद्यपि मैं देख रहा था कि मेरे भाषण के अन्तिम शब्द धनाधीशों के मन पर उचित प्रभाव नहीं डाल रहे क्योंकि मत्त-वैभिन्न की भावना कई मस्तकों पर सिकुड़न की रेखा बनकर दिखाई दी तो भी इस सचाई को कहे बिना रहा नहीं जाता। मेरा विचार है मन्दिरों, शिक्षा मन्दिरों या धर्म संस्थानों के अन्दर घटित होने वाली संघर्षपूर्ण दुर्घटनाओं का बहुत कुछ कारण उनके निर्माण में लगा हुआ कुसंस्कारपूर्ण ढग से कमाया हुआ
धन का प्रतिबिम्ब भी है। जिन भवनों के निर्माण में गन्दी कमाई

लगी ही उनकी छाया में बैठकर विचार ग्रहण करने वाले अमंस्कृत कैसे हो सकते हैं ? शोषण का धन शोषितों के खून की छाया। दिखाकर निश्चय ही विप्लव की आग भड़का अशान्ति को जन्म देता है।

तालियों की गड़गड़ाहट को रोक कर मैंने सूचना दी—"अब आपके सामने शिक्षार्थी अपना कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहे हैं आशा है आप प्रसन्न होंगे। प्रस्तुत कर्त्ता है - "तनवीर कबीर—जिलाधीश साहब के साहबजादे, तन्वंगी— शान्ता की मान सपुत्री .. —शान्ता कुञ्ज को प्रेरणा स्रोत थीरी——कबीर की ममेरी बहिन।"

कई मिनट तक पंडाल ताड़ियों की गड़गड़ाहट से गूंजता रहा, मेरे भाषण के बाद रसिक जन एक-एक क्षण यवनिका के उठने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उपस्थित व्यक्तियों का सम्पूर्ण ध्यान रंगमंच की ओर केन्द्रित हो गया था।

पर्दा उठा, तीव्र नील प्रकाश में स्टेज जगमगा उठा, नैपथ्य से पार्श्व गायक का सुन्दर संगीत गूंज रहा था—

"नारी तू सखी, सहचरी माँ,
शक्ति राखी के धागों की।
मोहन की प्रीत भरी वेणु,
धुन है गीता के रागों की॥

जिसके साथ मंच पर नारी के, माँ, बहिन, पत्नी के विभिन्न रूप अत्यन्त भावात्मक मुद्रा में चित्रित किए जा रहे थे, दर्शक मुग्ध थे, पर तभी पार्श्व गायक के स्वर में कारुणिकता झलक उठी—

क्या-क्या न सहा तूने देवि,
पर आज कदम क्यूं बहक गये।

आँखों पर है विश्वास नहीं,
तेरे जो देखे रूप नये ॥

उसके साथ ही जैसे सभी साजों पर किसी ने एक दम एक साथ हाथ रख दिया हो, निराला दृश्य दिखाया जाने लगा, घिरते हुये बादल, चमकती बिजली, सर्वथा नया संसार, पाश्चात्य संगीत हिप्पियों के झुण्ड। भटके हुये भावों के भौंडे गीत, डगमगाते कदम, थिरकते पाँव, चिलम के सुट्टे; धुओं के बादल, कोई मदहोश कोई बेहोश कोई हतप्रभ, कोई जड़, कोई चितंक, कोई चितरा। कोई लगातार सुट्टे लगा रहा था और जुँआले वालों को बिखरा पागलों की-सी चेष्टा कर रहा था।

उन सबके बीच ऐसी ही विचित्र मुद्रा में सुट्टे का अभिनय करती हुई तन्वंगी को देख मैं अपनी हँसी न रोक सका, पर शान्ता के तेवर देखकर मैं सकपका गया, मैंने शान्ता का हाथ दबाकर आँखों में भांकते हुये कहा——
— — अभिनय है, शान्ता ने हाथ खींचते हुये उत्तर दिया——

'जीवन भी तो अभिनय ही है पर यह निर्णय तो आत्मा को ही करना पड़ता है कि कौन-सा अभिनय करें।"

पीछे किसी ने टोका— — "जरा देखिए," उसकी आनन्द मग्नता में बाधा उपस्थित हो गई थी, मैंने, उपस्थित समुदाय पर दृष्टि डाली तो अत्यन्त तन्मय पाया, शान्ता तो भी फुस-फुसा रही थी—"क्या कर रही है यह बाप की लाडली मैंने कहा—"वही जो हमने और तुमने नहीं किया, पूर्व और पश्चिम का मेल। पूर्व ने घसीट मारा है पश्चिम को।

सहसा रंग मंच पर एक युवक अभिनेता का तेजस्वी स्वर सुनाई पड़ा, जिसकी वेशभूषा सरल, भारतीय थी, पर वाणी में अद्भुत, गाम्भीर्य तथा भारतीय संस्कृति व सिद्धान्तों का समावेश

वह युवती अभिनेत्री को धिक्कारते हुये ओजस्वी भाषण देना चाहता था पर वह बीच में ही चिल्ला उठी, उसकी चीख सुनकर सारा पंडाल ही सकते में" आ गया—

'कौन हो तुम मुझे रोकने वाले,
तुम मुझे रोक न पाओगे,
लोटेंगे, घेरेंगे तुमको, शब्दों के तीखे तीर वही,
जो मुझ पर आज चलाओगे।
तुम ओले बनकर बरसो भी,
बन गई आज हम चट्टानें।

तप तप कर पाप की ज्वाला में,
जो पुरुषों ने हमको दी हैं,
यह घृणा, द्वेष, छल बल सब कुछ,
हमको दे तुमने पका दिया,
अब वही वासना की भट्टी,
तुमको लेकर पिघलायेगी,
अपने हाथों से दण्ड भोग,
तुम स्वयं आज पछताओगे,
झुलसोगे और झुलसाओगे,
तड़रोगे और तड़पाओगे,

युवक ने अपना संवाद बोला—
तुम भूल रही निज रूप अरे,
नारी हो मूरत करुणा की,
तुम अरे समर्पण की देवी............।"
वह बीच में ही चिल्ला उठी—
चुप रहो समर्पण में मैंने,
अपान हीं दिया था खुद तुमको,
पर अरे निठुर मानव तुमने

कर दिया तिरस्कृत हम सबको।

मैं रही सिसकती रो रोकर,

खा-खाकर ठोकर भी तेरी,

पर अरे विरागी, ढोंगी हो,

तुमने छोड़ी दुनियां मेरी।

सहसा रंग मंच पर धुंए का बादल उमड़ा, एक अपूर्व दृश्य दिखलाई पड़ा—

सतयुग का वातावरण, अरण्यवास, गौतम ऋषि की कुटिया सौन्दर्यमयी यौवन सम्पन्न अहिल्या का दिव्य सौन्दर्य. विरक्त ऋषि की साधना, नियमित क्रम, सूने आश्रम में कामातुर इन्द्र का प्रवेश, गहन अन्धकार का सन्नाटा. आलस्य का अतिरेक पुरुष का छल, नारी का भोलापन, गौतम का प्रवेश, पुरुष का क्रोध, शाप, उत्पीडन, प्रताडन, नारी मौन, गूंगी, जड़, नतमस्तक, सब कुछ सहने वाली पत्थर की चट्टान, अन्याय और अत्याचार की शिकार, ठगिनी माया और पापों की पुतली, न जाने क्या-क्या ? पर सब कुछ होकर भी पुरुष के मनोरंजन का साधन।

धुंए का बादल फटा लाल रोशनी में नया दृश्य उभराः—

त्रेता युग, वन खण्ड, रथ की गड़गड़ाहट, पक्षियों की चहचहाट, हरिणों की दौड़, दूर कहीं से आती सिंह की दहाड़, कांपते हुए अश्वों की हिन-हिनाहट, रथारूढा कोमलाङ्गी जानकी की सकपकाहट, और गम्भीरता की मूर्ति बने बैठे सारथी लक्ष्मण के व्याकुल हृदय की छटपटाहट। टप, टप, टप—अश्वों के पैरों की टाप ! सहसा सारथी की असावधानी का परिणाम झंखाड़ में फंसे अक्षावरण से अन्धे अश्वों की चीतकार और लक्ष्मण की घबराहट।

जानकी का प्रश्न, उत्तर में मौन भ्रातृभक्त लक्ष्मण के

स्वर में निर्मम न्यायाधीश की मर्यादा की सान पर चढ़कर कीर्ति के ज़हर में बुझे हुये, आत्मशक्ति विहीन किसी समाज भीरु व्यक्ति के शासकत्व की तन्द्रा में चलाये गये पैने शूल के समान कठोर शब्द, 'उतरो देवि ! आपको वनवास हुआ है।"

इससे पूर्व कि राज्याज्ञा से प्रश्न किया जाए, आँसुओं से भरा मुँह लिये उदघोषक का रथारुढ हो बाग थाम, पागलों की तरह, अश्वों पर अज्ञात क्रोध सा उतारते हूये कोड़े बरसा कर दौड पड़ना जैसे स्वय ही किसी दुर्घटना के लिये प्रयत्नशील आत्महत्या में लीन हो। असहाय जानकी का कभी धरती कभी आकाश, कभी वृक्ष लता, कभी अपने गर्भ की ओर देखना और फिर······ ·· बस एक चीख··· ··· ···
"मेरा दोष ?" प्रश्न प्रश्न ही रह गया धुँए का बादल फिर उमड़ने लगा।

नया युग—

शुद्धोधन के पुत्र सिद्धार्थ का राजमहल, शयनकक्ष में पति परायणा मातृवत्सला यशोधरा के अँक से चिपटा हुआ निद्रा निमग्न अबोध राहुल और विश्वास की चादर को फाड कर खडे हुये ज्ञान के भूखे सृष्टि विलास से डरे हुये राजकुमार का चोरों के समान पलायन – सहसा निद्रा निमग्नों की स्वप्न देखकर छुटी कँपी कँपी – वही एक प्रश्न·· "मेरा दोष ?,,

उत्तर तोभी···नगण्य।

धुँए के बादल समाप्त हो गये और फिर वही सुट्टे मारती नयी पीढी तन्वङ्गी

"देखा तुमने क्या दिया है नारी को ? तुमने कभी उत्तर दिया क्या ? फिर मैं ही क्यों उत्तर दूँ।"

हिप्पी बालिका के रूप में प्रतिशोध की प्रतिमूर्ति बनी तन्वङ्गी

मानो पुरुष के महान पुरुषत्व पर असंख्य प्रश्न चिह्न बनाकर खड़ी होगई थी, सभ्यता के विकास को चुनौती दे रही थी, अकाट्य तर्कों से धर्म के विशाल जंजाल को छिन्न कर रहीं थी, मानव नत मस्तक था, कोई उत्तर नही था उसके पास।

किन्तु युवक हतोत्साहित नहीं था, अत्यन्त संयत स्वर में उसने घन गर्जन के समान वाणी में गाम्भीर्य भरकर कहा—

"निश्चय ही मैं उत्तर दूंगा, पर कुछ प्रश्न उठाकर ही, मेरे प्रश्न ही तुम्हारे उत्तर होंगे, नारी इतिहास की जिन पत्तों में तुम धुमी हो क्या जीवन इतना ही है, क्या वही एकमात्र दृष्टि-कोण है' लो मैं तुम्हें दिखलाता हू—

'सहसा फिर धुआँ और रंगमंच पर एक नया दृश्य —

नेपथ्य से 'त्राहि त्राहि' बचाओ बचाओं" की सामूहिक ध्वनि, चीत्कार, राक्षसों के अट्टहास, जैसे भयंकर अत्याचार से प्रताडित मानवता प्राण रक्षा के लिये रुदन रत हो—

'बचाओ, तारकासुर मारे दे रहा है, देवता कहाँ रक्षक कहाँ गये। लगता है भगवान भी सो गये ·····।" ध्वनि लगातार आती रहती है।

रंगमंच पर हिमालय का दृश्य उभरता है, ऊंची नीची बर्फीली चट्टाने, जिनको छू कर झुके हुये बादल, विशाल उपत्यका, चट्टान पर समाधिस्थ किशोर तपस्विनी हिमाचल कन्या जो शरीर से कृश होने पर भी अलौकिक प्रकाश से युक्त। ब्रह्मा आये, विष्णु. इन्द्र धनाधीश कुबेर आये, किन्तु उसने किसी की ओर आँख उठा कर न देखा

बूढे सप्तर्षियों ने आकर अभ्यर्थना की —

"तुम्हारी तपस्या के सम्मुख आज हम सब नत मस्तक हैं देवि तुम महान शक्ति हो, [illegible] सब तुम्हारे [illegible] भी निस्तेज है, बोलो किसलिये शरीर को कष्ट दे रही हो—?,'

बालिका ने व्यग्य पूर्ण मुस्कान के साथ कहा—

आश्चर्य है दूध के समा दाढ़ी रखने वाले महान अनुभव शील पुरुष मुझसे यह प्रश्न कर रहे है, एक नारी क्या चाहती है? पिताको यह बात सुता बतलायेगी क्या ?"

सप्तर्षि एक क्षण को लजा गये—

एक ने कहा — "जानते है प्रकृति ! तुम पुरुष की कामना से तपस्या रत हो, किन्तु तुम्हारी चेष्टा ने हमें असमंजस में डाल दिया है, इतने महान सत्ता सम्पन्न पुरुष तुम्हारे सम्मुख होकर गये किन्तु तुमने दृष्टि न उठायी।"

"ठीक कहा आपने, जीवन की पूर्णता के लिये प्रकृति को पुरुष की इच्छा होती है, किन्तु पुरुष की ...।"

'क्या उनमे तुम्हे पुरुष न दिखाई पड़ा।"

"रहा होगा पुरुष उनमें कभी, पर आज नहीं।"

"बेटी वे तो लोकाधिपति विश्वाधिपति कहलाते हैं, विश्व-पालक कहलाते हैं।"

'पर क्या हैं आज वे पालक, सृष्टि तारकासुर के डर से त्राहि-त्राहि कर रही है। सहमे भीत-प्राण को भी आप पुरूष कहते है ? आज वे ऐश्वर्य के पीछे दौड़ रहे हैं, धन और पद की लोलुपता उन्हें झिझोड़ रही है वैकुण्ठ, देव लोक और अलका पुरियों के मोह उन्हे बाँध रहे हैं त्याग कहाँ ? वे और उनके अनुयायी भक्तजन पूजी के पीछे दौड़ रहे हैं, देवाङ्गनाओं, वाराङ्गनाओ यक्षणियों और लक्ष्मी की क्रीड़ाओं में रत हो रहे हैं, इस नारी का मन वह न मोह सके, अशक्त। त्याग उनमें है नही, सयम वे छोड़ बैठे, सर्वथा योग विहीन।"

"तो तुम्हे उनसे श्रेष्ठ कही दिखलाई पड़ता है क्या ?"

"हाँ वही श्रेष्ठ है जिसे झुकाने मे मैं असमर्थ रही हू। नारी के सम्मुख नाक रगड़ने वाला पुरुष उसे कैसे जीत सकता है ?"

'कोन है वह ?'

मेरे आराध्य, भगवान शंकर।"

व्यवहारिकता का जामा पहने सप्तर्षि आश्चर्य से चकित हो अट्टहास कर उठे—

"वह अरण्यवासी, निगम्बर वेषधारी, जिसके पास रहने को आवास नहीं, खरचने को कौड़ी नही, क्यों अपना जीवन बर्बाद करना चाहती हो।"

"सावधान ऋषि वर ! आप मुझसे बात करने आये है या मेरा अपमान करने आये हैं, मैं अपने आराध्य के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं सुन सकती।"

"यह तो तुम्हारी भावना हुई इसमें तर्क क्या है ?"

"भावना के बिना भगवान भी पाषाण होता है, ऋषिवर ! मेरी भावना निराधार नहीं है। भगवान आसुतोष ग्रह विहीन, सम्पत्ति विहीन दिखलाई पड़ते है पर शक्ति विहीन नही, वे महान सामर्थशाली हैं, निरुद्योगी नही।—

लक्ष्मी उद्यो ी की अनुर ी होती है। स्वामिनी या प्राणेश्वरी नही, उनके प्राण लक्ष्मी की मुट्ठी में नही महान शक्ति से उत्प्रेरित हैं। आज के युग मे जब कि सबके प्राण लक्ष्मी की मुट्ठी में बन्धे बिलबिला रहे हो , वह त्यागी सर्वथा मुक्त पुरुष, अरण्य वास करशक्ति संचय कर रहे हैं, वन सम्पदा को ही भरण पोषण का आधार समझ विकसित कर रहे है, योग शक्ति के द्वारा प्राण शक्ति को सबल बनाकर जीवनी शक्ति का विकास कर रहे हैं। मैं उन महा पुरुष के चरणों की वन्दना करती हूं, वह सम्पूर्ण समाज को मंगलमय बनाना चाहते हैं, वह समाज को शिवमय बनाने के लिये कृत संकल्प हैं वे पूजीवादी या एश्वर्यवादी नहीं, उनका त्यागमय जीवन ही जन मानस का नेतृत्व कर सकता है। उनकी दृष्टि में ... [illegible]

सैना उनके अनुचरों को देखा है तुमने, प्रेतों के समान उन नर कँकालों को देखा है जो तुम्हारे देवों से तिरस्कृत हो चुके हैं दु;खों की भट्टी में जलते उन असंख्य प्राणियों को उन्होंने अपना स्नेह दिया है, किसी का इतना विशाल मन ? है किसी में यह सामर्थ्य ? वही पूंजियों का अधिग्रहण कर तारकपुर समान नरपशुओं का विनाश करने की संहार-क्षमता रखते है, वे देवता जो स्वयं ही ऐश्वर्य संलिप्त हैं क्या केवल लोकायन महानता की भोजपत्री खडग लेकर भयँकर अत्याय का सामना कर सकते हैं ? मैं सम्पत्ति का अनादर नही करती किन्तु सम्पद दैवी होना चाहिये, दैवी सम्पद ही सुख का संचार करती है।

ऋषिवर ! संयमी पुरुष शक्तिशाली होता है, शक्तिशाली ही समाज की रक्षा मे समर्थ होता है, रक्षित समाज में ही धर्म का विकास होता है, धर्म रक्षा से जीवन शिवमय होता है, किन्तु शिव शक्ति के अभाव में शव बन कर रह जाता है। नारी शक्ति है, नारी शिव का साथ न दे लोलुपों कदर्यों, विलासियों असयंमी लक्ष्मी दासों की अनुचरी बन जाय, प्रेमिका बन जाय तो समाज में शिव का नही अशिव का बोल बाला होगा, जनता शक्ति की पूजा छोड़ काम और कंचन की पूजा करेगी, राष्ट्र डूब जायेगा, समाज स्वाह हो जायगा। नारी जब आभूषणो के मोह में पड़ती है तो उसका पुरुष भृष्टाचार की ओर मुड़ता है।

ऋषिवर ! मैं प्रकृति हूँ सृष्टा की सृष्टि में मैं अपना विनाश स्वयं नहीं कर सकती, मैं अविनाशिनी हूं। इससे पूर्व कि तेजस्वी पुरुष उदासीन हो जायें मुझे उसे बलात् आकृष्ट कर कर्म प्रवृत कर देना चाहिये। मैं नारी जाति के सम्मुख यह उदाहरण प्रस्तुत करना चाहती हूं कि वह विलास क्रीड़ा को त्याग वीर पूजा में संलग्न हो। आप देखिये मेरे रूप··· ···"

धुंए के विशाल बादल में तपस्विनी बालिका विराट् रूप धारण

करती हुई भवानी के रूप में दिखलाई पड़ती है-अनेक भुजाए, अनेक अस्त्र शस्त्र विकीर्ण होता हुआ अनन्त प्रकाश, दहाड़ते हुये सिंह, शौर्य का प्राचुर्य, राक्षसों का विध्वंस। उसी एक रूप में अनेक रूप छिटकते हुये दिखलाई पड़ते हैं, सावित्री, गायत्री शकुन्तला अनसूया, अरुन्धति सीता उर्मिला, मदालसा, अपाला झाँसी की रानी और इन्दिरा ····आदि।"

एकाएक पटाक्षेप हो जाता है तो भी सम्पूर्ण दर्शक लगा तार रंगमंच की ओर ही देखते रहते हैं और अधिक दिखाये जाने की सम्भावन बनी रहती है पर उसी बीच तन्वङ्गी और वह युवक आकर दर्शकों को हाथ जोड़ नमस्कार करते हैं और कार्यक्रम समाप्ति की घोषणा करते हैं, दर्शक किंकर्तव्य विमूढ से सोचते रहे और धीरे धीरे दीर्घा से उठने लगे।

आज का कार्यक्रम बहुत सुन्दर रहा, कोई मुझे कोई शान्ता को, कोई तनु को और कोई तनवीर को बार बार साधुवाद दे दे कर सराहना कर रहे थे।

× × × ×

"तनु और तनवीर के साथ ही पार्वती का अभिनय करने वाल मुस्लिम बालिका शीरी की कलात्मक अभिव्यक्ति ने अपने अनुपम सौन्दर्य के साथ सम्पूर्ण जन मानस को आन्दोलित कर आकृष्ट किया। कमल की परागी सुगन्ध के समान सौन्दर्य में मूर्तिमान कला मर्मज्ञों को बरबस अपनी ओर खिचने के लिये विवश कर 'धन्य धन्य" का साधु घोष करा रही थी।

लालमणि से प्रतिबिम्बित स्फटिक के समान उसकी देह का अरुणाभ सौन्दर्य बदले हुये काले अम्बर मे श्लाम मेघाच्छन्न आकाश में झाँकते पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र के समान सबकी आँखों

में गड़ना जा रहा था। पर वह अनेकानेक प्रशंसकों से उदासीन केवल तनवीर की ओर देखे जा रही थी, तनवीर के साधुवाद में उसका मन धुलता जारहा था और तनवीर था कि, "धन्यवाद" की औपचारिकता निभाता हुआ निरन्तर तनु की ओर बढता जा रहा था और इससे पूर्व कि तनु शान्ता के चरणों का स्पर्श कर आशीर्वाद प्राप्त करने को झुके उसके अनुसरण कर्त्ता तनवीर का सिर उससे टकरा गया, दोनों ठठाकर हँस पडे, ममतामयी शान्ता ने छाती से चिपटा लिया किन्तु तुरन्त सामने भोली भावमयी शीरी की डबडबाई आँखों में मोती देखकर उसका हृदय करुणा से तरङ्गायित हो उठा, उसने दौड़कर उसके माथे पर चम बाहों में भर लिया, शीरी माँ की गोद पाकर फफक उठी, मैं, तनवीर और तनु समझ न सके, क्या बात है ?

× × × ×

उमङ्गों से भरा तनवीर मानो आज मस्ती की छानकर पी गया था उसका अंग अंग मीठी पुलकों रोमांचित था, पाँव जैसे धरती पर नहीं पडते, आनन्द मन में समा नहीं पा रहा था। अपनी धुन में बढता हुआ वह बडे डाकखाने के पास सड़क पार कर रहा था कि एक सफेद फियट से टकराते टकराते बचा, ड्राइव करने वाला युवक जहाँ अपने कौशल का परिचय दे चुका था, सभ्य भी था. दुःख प्रकट करते हुये उसने तनवीर से जब क्षमा याचना की तो तनवीर अजीव मस्ती से ठहाका मारकर हँस पड़ा

"यकीन मानिये भाई साहब, आपको माफी माँगने की जरूरत नहीं, मेहरबानी तो आपने मुझ पर की है, जिसके लिये मुझे ही आपका शुक्र गुजार होना चाहिये, पर ना · ना···दूँगा नहीं।" मुस्कराकर युवक ने दिलचस्पी के साथ प्रश्नमय नेत्रों से तनवीर को देखा।

"मैं समझी नहीं ··· ।"

तनवीर ने हल्की चुटकी ली···, "आप समझ न सकेंगे मैं समझाऊँगा नही।"

यह वो नाजुक हकीकत है जो समझायी नही जाती" युवक ने बात को पूरा करते करते हंसी की फुलझड़िया छोड दी—

"मुहब्बत मायनी अल्फ़ाज में लायी नही जाती।" दोनों पहली मुलाकात में अभिन्न मित्रों की भाँति टटाकर हंस पडे। युवक ने बड़ी बेतकल्लुफ़ी से कन्धे झकझोरते हुये कहा, क्या मैं अपने अनजान दोस्त से मेरे अपने छकडे में बैठा कर मुझ नाचीज की हौसला अफजाई करने का मौका देने के लिये गुजारिश करने की हिम्मत कर सकता हूं ?"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं, उठाइये २, हैदराबादी प्रिंस को रूह की जिस्मानी पालकी।" कार में बैठे तनवीर ने ठहाका लगाया-युवक ने हसी की पिचकारियों को छोड़ते हुये टैक्सीड्राइवरी अन्दाज में पूछा—

"किदर साब··· "

"कचहरी रोड़, पुलिस लाइन बडे थाने के पास मुगलई जेल खाने में·······।" तनवीर साहबी अन्दाज़ में बोला। युवक गम्भीरता का अनुभव करता हुआ उसे घूरता रहा, तनवीर ने आश्चर्य चकित व्यक्ति का अभिनय करते हुये कहा—

·······'क्यो क्या बात है भई"······"मुहब्बत का मामला है।" युवक ने उसी अन्दाज़ से कार की खिड़की का दरवाज़ा खोलते हुपे कहा— "नीचे उतरिये साहब, यह गाड़ी वहाँ नहीं जाती, किसी शरीफ आदमी को दो जूते लगाइये, लाल टोपी वाले बड़ी वैगन में बैठाकर आपको वहाँ की सैर करा लायेंगे।" तनवीर ने जबाब पर जवाब ठोकते हुये कहा—

आपसे ज्यादा शरीफ तो ढूंढने पर भी न मिलेगा।"

युवक ने बनावटी गुस्से में कहा—"क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि जनाब सिर इधर कीजिये।"

"किस लिये ?"

"ताकि हुजूर के सिर माथे को चूमकर इस दिमाग़ की दाद दे सकूं।"

दोनों हँस पड़े जैसे दो हँसती हुई फुलझड़ियाँ भिड़ा दी हों, युवक ने एक बार फिर कहा—

"यार तुमसा नहीं देखा, मैं बहुत खुश हूं तुमसे मिलकर····।"

"खूब गुजरेगी जो मिल बैठेंगी दीवाने दो।"

उसने गम्भीरता से कहा, चलिये आपको आपके मकान तक छोड़ दूं आपको मेरे कारण कुछ देर होगई होगी।"

तनवीर ने भी उसी गम्भीरता के साथ कहा— "धन्यवाद, आज नहीं फिर कभी, क्षमा कीजिये मुझे एक दूसरा काम है। फिर मिलेंगे।" कहकर चल दिया। युवक ने पूछा, "कहाँ ?"

"तुम्हें ढूंढ ही लेंगे कहीं ना कहीं।" कहता कहता भीड़ में खो गया।

× × × ×

मुस्कराहटों भरी बिदायगी लेकर तनवीर को अपने रास्ते पर छोड़ भीड़ भरे रास्ते पर अत्यन्त कौशल के साथ ड्राइव करता हुआ युवक अपनी मस्ती मे आगे बढ़ चला—कुछ आगे चलकर इतनी भीड़ थी कि उसे कार आगे बढ़ाना मुश्किल हो गया, शायद कोई पिकचर छुटी थी, उसे चींटी की चाल पर गाड़ी ड्राइव करना पड़ा। उसकी छोटी कार और छैला व्यक्तित्व दोनों ही इतने आकर्षक थे कि राजपथ पर चलती हुई किशोरियाँ ही नहीं जवानी की स्मृतियों में खोये हुए पथिक

बूढे भी उसमें डाह करने लगते थे। नये फैशन की तितलियाँ एक क्षण के दर्शन में उसे अपना बना लेने के प्रयत्न में विचित्र प्रकार की मुद्राओं का प्रदर्शन करती थी।

कोई बालों की लटों को झटका देकर शराबी आँखों से ऐसे घूरती थी जैसे दृष्टि न होकर फेंका हुआ प्रेम-पाश हो। या जादू का जाल हो जिसमें खिंचा हुआ कार से निकाल कर मानों वह बीच सड़क पर उनके चरणों में आ ही गिरेगा। कोई शीतल निश्वास छोड़ती चिर संचित आशाओं के रूप में वक्ष को उभार दिल के फफोलों को दिखलाती सी मानों गर्व के साथ ही प्रेम के करुणा दान की याचना करती थी। किसी की साड़ी का पल्ला बार बार खिसक कर प्रेम के क्षेत्र में प्रवेश करने का आमन्त्रण देता हुआ-सा प्रतीत होता और वह कनखियों से निहार कर व्यर्थ ही उसे सम्भालने के असफल प्रयत्न का झूठा प्रदर्शन करती हुई लज्जा की देवी बनने की चेष्टा कर रही थी

कोई अपनी सखी को माध्यम बना "हाय सोनिया? मालूम।" कह कर फारवर्ड ब्लाक सी खिल खिला पड़ती और हाथ से छोड़े हुये बेग को इस प्रकार उठाने का प्रयत्न करती जैसे वह अनजाने ही छूट पड़ा हो और जब दृष्टि दूसरी ओर होने के कारण अन्धों से टटोलते हाथ उसे उठाने में विलम्ब कर देते तब अपनी शर्म छिपाने के लिये सखी की ओर मुस्कराने का अभिनय करने लगती, पर दिल की धुकधुकी के साथ उसे यह देखकर सन्तोष होता कि उसकी सखी भी उसे नहीं, उसे ही देख रही है जिसे छलने के प्रयत्न में वह स्वयं छली जा रही है।

कोई-कोई रूप गर्विता इस प्रकार आगे बढ़ती। मानों गजगामिनी का समस्त सौन्दर्य उसकी धीमी गति में मुखर हो

उठा हो। पर मोरनी की भाँति उसका मन रह रहकर उसकी गर्दन को छैला की ओर घुमा देता, उसका नशा उस समय टूटता जब कि कड़वी शराब की घूँट की तरह भीड़ में सामने से आने वाला कुरूप दैत्याकार पुरूष मन ही मन स्वयं को धन्य अनुभव कर बाहर से "सोरी मैडम" कहकर क्षमा-याचना का अभिनय करता हुआ बाँहों मे थामने की कोशिश करता।

वह मुँह ऐसे बनाती हुई जैसे किसी ने क्षमायाचना की मिठाई में पागकर उसके सीने से बदतमीजी की तीखी कटार छुआदी हो, उस पुरूष को अन्धे की उपाधि से अलंकृत करती हुई, न देखकर चलने के लिये, इस प्रकार भिड़कती जैसे खुद देखकर ही चली हो। कुरूप बेचारा आह भरकर जैसे सारे रहस्य की तह में पहुंच चुका हो दार्शनिक की भाँति ठण्डी साँस छोड़ कर तड़प उठता—मुकद्दर अपना-अपना।" मुकद्दर के नाम पर अपने ही गाल पर चांटा-सा जड़ता हुआ आगे बढ़ जाता।

कोई भोली, मुग्धा चुम्बकीय शक्ति से आकृष्ट सी उस धीमी गति युक्त कार से गति मिलाने की चेष्टा करती पर दूसरे ही क्षण झटके से कार आगे निकल जाने से पीछे रह जाने पर आह छोड़कर सिसक-सी उठती, पर फिर भीड़ में उसके आगे जाकर रुक जाने पर मृग तृष्णा मे छली-सी गति तीव्र करने की चेष्टा मे किसी ठेली वाले से टकरा कर खुद चोट खाकर भी अन्धी की उपाधि धारण करती।

ऐसे ही भीड़ भरे बाजार में, नीले आकाश में चमकते हुये चन्द्रमा की कान्ति लिये, नीली साड़ी में लिपटी हुई, चपला के समान सौन्दर्य की ... हुई, कमनाल

सरीखीं सुन्दर बाँह पर, भौंरों के झुण्ड सा काला केश, शाम मानों कमनीयता का बोझ सम्भालती हुई मथर गति से चली जा रही थी एक युवती, जिस पर युवक की दृष्टि आकर ठहर गई बहुत प्रयत्न करने पर भी उसका मन काबू में न रह सका. लगा दो शरीरों के बीच विद्युत धारा प्रवाहित हो गई और बीच–बीच में करन्ट के झटके लगने के कारण ही उसकी कुशल ड्राइवरी खटाई में पड़ते ही सन्तुलन बिगड़ जाता है।

वही हुआ ऐसे अवसर पर जिसकी आशंका हुआ करती है– – – – "क्य S S श-" की आवाज से ब्रेक लगा और युवक के मन की तरह सारी मोटर काँप कर रह गई। पहिये के नीचे जो करुण चीत्कार कर उठा था, काले और सफेद बालों की खिचड़ी बिखरे, बरसों से लदे मटमैले चिथड़े बदन पर लादे, कोई प्रौढ़ साधु एक हाथ में टूटा फूटा कमण्डल लिये, आंखें फाड़, भय से थरथराता हुआ पहिये के नीचे से निकलने के लिये छटपटा रहा था। युवक के कार से उतरने से पहले ही लोग इकट्ठे होकर लानत मियानत करने लगे। युवक किंकर्त्तव्य विमुढ़ तो था ही सारे ही लोगों की फबतियां उसके मन में घबराहट पैदा करके मुख को विवरण करने लगी।"

कुछ ने कहा "अन्धे हो गये हैं, पैसे का नशा चढ़ा हुआ है जमीन पर पैर ही नहीं रखते, हवा से बातें करते हैं इनके लिये क्या– – – दूसरे की जिन्दगी – – – – दो कौड़ी की समझते हैं।"

कोई सोने की चैन गले में डाले सूट-बूट धारी कई सुनहरी सुन्दर कीमती पत्थरों से जड़ी अँगूठी वाले हाथों को नचाते हुये खीसे निपार कर युवक की वकालत करते हुये बोले— —"ये बूढ़े भी तो मरने को तैयार खड़े रहते हैं, इन्होंने तो

पेशा बना लिया है, किसी न किसी अमीर को देख कर उसकी सवारी से टकरा जाते है, बहुत ले दे के पिंड छोड़ते है और हास्पिटल में मौज को मारते हैं ।"

कोई मध्यम वर्गीय दया दिखलाते हुये बोला — ऐसा न कहिये, हमारे और तुम्हारे परिवार का भी तो कोई व्यक्ति इस दशा में हो सकता है ?"

"कोई मारवाड़ी सेठ, जिन्हे अपनी वैष्णव पत्नी की दयालुता के कारण विवश होकर रुक जाना पड़ा था, एक हाथ से तोंद को संभालते हुए दूसरे से पत्नी का पल्लू खीचते हुये, गुस्से में भी गिड़गिड़ाने के समान बोले

' चलो सेठाणी ये तो बिजार होवै, रोज रोज को तमास्यो है `` ये शीणा देखण मों अच्छे ना लागे, म्हारो थारो के काम के``` ।"

फिर भी पत्नी के ना सरकने पर युवक को सम्बोधित करके बोले—

"जल्दी करो, लाला जीं, पाँच सात रुपये दे कर मामला रफ़ा दफा करो, कोई पुलिस वाला सुण लेगा तो कई सौ रुपये का शट्टा लग जावेगा तुम्हारी जाण मैं । बियारी के बालक की तरियाँ हुसियारी तै काम लो `````` राम```राम``` चलो शेठाणी मेरे को देख के आवै सै, जी कच्चा होवै से ।

तभी कोई तेल से चिकने अधफटे वस्त्रों से लिपटा सजीला नौजवान मजदूर, जिसका बदन बर्दाश्त न करने के कारण गुस्से से तमतमाकर काँपने लगा था, भट्टी में तपे हुए लाल लोहे की भाँति दमकते हुये मुख पर बल पूर्वक क्रोध के चिह्नों को मिटाने का असफल प्रयत्न

करता हुआ बोला—

"ठीक है सेठ जी, तुम्हारे लिये तो यह तमाशा ही है, फिर इस खून से घबराकर क्यों भागना चाहते हो, खून चूसना तो तुम्हारा रोज का धन्धा है, यह एक क्या न जाने कितने मासूमों के खून से तुम लोगों के महल रंगे हुये हैं. तुम्हारे लिये हवाई सवारियाँ हैं और हमें सड़क पर चलने का अधिकार भी नहीं ! इन गरीबों को मर हीं जाना चाहिये क्यों कि ये कीड़े जब तक जुल्म बर्दाश्त करते हैं तब तकअन्याय की भट्टी जलती ही रहेगी ।" उसका दूसरा साथी अपने भावावेश को रोक नही पाया, "पर यह खून एक दिन रंग लायेगा, मुफलिसों के खून अपनी मोटरों को रग देकर चतकाने वालों ! एक दिन क्रान्ति की आग तुम्हे जलाकर खाक कर देगी ।" कहकर उसने अपनी आँखे लाल करली । उसके साथ ही खून की लाली कई आँखों में उतर चुकी थी । मजदूर के शब्दों का जादू भवावेश बनकर दहक उठा था । उत्तेजना की लपटें मानों सारी अमीरी के जंगल को जलाकर राख करदेने के लिये अकुला उठी थी । कई ने कहा 'अरे, कल क्या होगा ? दिखा दो आज ही जलवा. गरीबों का खून इन्होंने पानी समझ. रखा है, मारो सालों को, लगादो आग कार में ।" और इससे पहले कि कोई शान्त करने की चेष्टा करे, युवक, मारवाड़ी और अंगूठी वाले पर कई हाथ जा पड़े थे । गुण्डों ने मौके का फायदा उठाया बलवा होगया' लोग इधर उधर भागने लगे। दुकानदार घबराकर माल समेटने लगे । लूट मच गई । अमीर स्त्रियों के आभूषण उतारे जाने लगे, आदमियों के भण्ड

चक्रवात की तरह इकट्ठा होने लगा । ''इन्कलाब, जिंदाबाद'' के नारे लगने लगे, 'गरीब का खून, रंग लायगा' 'खून का बदला खून' 'दुनिया भर के मुफलिसों एक हो जाओ' 'लेके रहेंगे आजादी ।'' न जाने कितने नारे मारे बाजार में गूँज उठे । कार में आग लगा दी गई । कार धूंधूकर जल उठी । कार के नीचे छट पटाता व्यक्ति मृत्यु की विभीषका से आतंकित हो उठा नारे लगाने वाले पचड़े में उलझे हुये थे, पर उसका खून पोंछने का प्रयत्न करने वाला वहाँ कोई न था । शीरी की दृष्टि कार से कुचले मरणोन्मुख व्यक्ति पर पड़ी तो वह चण्डी की भाँति करूण चीत्कार कर उठी, ''अरे उसे बचाओ'' और अपने जीवन की परवाह किये बिना उसने सम्पूर्ण शक्ति लगा वह उसे बाहर खींचकर दूर लेगई । भगवान की कृपा ही कहिये कि वहशी आग की लपटें उसके माथे पर महनत का पानी देखकर शर्मा कर उसे आगोश में न ले सकीं, उसने ''बाबा ''बाबा '' की पुकार के साथ प्रौढ को सीने से चिपटा लिया और बेतहाशा खींचकर सड़क से दूर ले गई । उसने तुरन्त साड़ी का पल्लू फाड़ बहते हुये खून पर कसकर पट्टी बाँधी, गाँठ बाँधते बाँधते वह भि चक्कर खाकर बेहोश हो प्रौढ के पास गिर पड़ी थी । लोगों की मार से परेशान युवक पुलिस के आ जाने के कारण अधमरा होते होते बचा, पुलिस वैगन से उतरते ही सिपाहियों ने अपने डंडो का प्यार बरसाकर अश्रुगैस के बादलों से नयनों में प्यार की गंगा बहाकर पब्लिक की तसल्ली कर दी, लोग तितर बितर होकर भाग गये । प्रौढ, युवक और शीरी को उठाकर जब अस्पताल ले जाया जा रहा था तो राजनीति

नेता टेलीफोनों के रीसीवरों पर टहाका लगा रहे थे
.. .. अच्छा हुआ कम्यूनिस्ट खूब बदनाम होंगे।"

× × × +

हॉस्पिटल के डाक्टर ने शीरी को पहचानकर, शान्ता कुंज को सूचना भिजवाई थी, "सांस्कृतिक कार्यक्रम में पार्वती का अभिनय करने वाली लड़की हॉस्पिटल में है. उसके माता पिता को सूचना दे दें। मैं शीरी के घर पर सूचना भिजवाकर तुरन्त हॉस्पिटल पहुंचा। शीरी के अतिरिक्त दूसरे घायलों को देखकर मैं सकते में आ गया—प्रौढ़ कोई और नहीं, भानुदेव था, मेरी आंखें धोखा नहीं खा सकती थी। युवक नई मां का जवान बेटा भास्कर ही था।

काल की अद्भुत क्रीड़ा पर मैं मन ही मन चकरा रहा था। बापू और बेटे का यह मिलन, जिसे मैं ही जानता था, मुझे ऐसा लगा जैसे दो कठोर चट्टानें काल के क्रूर हाथों द्वारा टकरा दी गई हों। यह रहस्य खुले बिना ही समाप्त हो जाता, मैंने काल की गति को मोड़ देने का निश्चय किया, दो आत्माओं को, दो बिछड़े हुओं को मिलाकर रूढ़ियों की जंजीरें तोड़ देने का संकल्प किया मैंने डाक्टर से कहा—

—"तीनों मेरे संरक्षण हैं इनकी चिकित्सा में कोई कसर न रहे, अतिरिक्त व्यय मैं वहन करूंगा। लौटकर अपना निश्चय शान्ता को सुनाया तो उसने न दु:ख का प्रदर्शन किया और न सुख का, कहा, "जो होना था हुआ, जो होना है होकर रहेगा, आप अपने अहं को क्यों उभार रहे हैं, लय पर ताल देते हुये देखते रहे, अब कौन-सा पर्दा उठता है।

जैसा होगा प्रभु जी की कृपा से ठीक ही होगा।

शीरी के लिये तनवीर और भास्कर के लिये नई माँ सूचना पाकर उद्विग्न से घर में घुसे, मैंने नई माँ के चरण छूने के लिये ज्यों ही हाथ बढ़ाये. ऊपर ही रोक कर उसी सांस में उन्होंने पूछा, "कहाँ है मेरा भास्कर, यह सूचना नहीं दी तुमने ?" मैंने कहा–

"आप चिन्तित न हों, वह हॉस्पिटल में हैं, मैंने पूरा प्रबन्ध कर दिया है।"

पर इतने से किम माँ को तसल्ली हुई है उसने बिलख कर कहा, "मैं देख तो लूं एक बार, मुझे चैन मिल जायेगा बेटा।" मैं, तनवीर और नई माँ उनकी ही कार में बैठकर तुरन्त हॉस्पिटल के लिये निकल पड़े।

शीरी को कोई चोट नहीं लगी थी वह होश, में आ चुकी थी। तनवीर को देखते ही वह खिल गई. सारे शरीर में आनन्द की सिहरन दौड़ गई, तन सिन्दूरी हो गया। भास्कर के बारे में उससे प्रथम सूचना मिली, "वो ठीक है, होश में आ गये हैं··· ··· ··· ··· ··· पर बाबा की हालत खराब है, नई माँ तुरन्त भास्कर के कमरे की ओर दौड़ गई।

माँ पुत्र से चिपट कर चुम्वनों की झड़ी लगा बैठी—, "मेरे वच्चे, मेरे लाल तू ठीक है, भगवान की दया है मैं तो घबरा गई थी।

भास्कर लजा भी रहा था और मुस्करा कर नजरे बचा बचाकर बार-बार शीरी को देखता जा रहा था। पर शीरी तो किसी और आनन्द की मदिरा में डुबकियाँ लगा रही थी।

वे सुध-सी शीरी ने तनवीर का हाथ खींचते हुये कहा,

"आओ तुम्हें बालक को दिखलाऊँ, देखना कि कई जगह पलस्तर बँधा है।" भास्कर ने टोका—

ठहरिये मैं भी आपके साथ चलता हूं, यह सब मेरे कारण ही हुआ..........वह नई माँ को तसल्ली देता हुआ उठ गया... ... ... मैं बिल्कुल ठीक हूँ ममी.........
आओ देखें ... ... तुम भी चल।" माँ ने कहा—

"मैं उसका प्रवन्ध करके आती हूं, तू वेटे घर चलो।".
भास्कर ने शीरी को देखते हुये कहा —"नहीं माँ, इन्सान को अपनी गल्ती का अहसास करना चाहिये।

मैं क्षमा माँग कर प्रायश्चित भी न करूं क्या? "अबकी बार शीरी भास्कर की ओर आकृष्ठ हुई। मैंने भास्कर, की हाँ में हाँ मिलाई, "हाँ ठीक ही तो कहता है भास्कर, एक इन्सानी फर्ज भी तो है..... उसे अपनी गल्ती पर पछताने का मौका तो मिला है।"

जिसने गल्ती की है उसे गल्ती सुधारने का कुछ प्रयत्न तो करना चाहिये, जो दूसरों को गिरा कर जीवन छीन लेने की चेष्टा करता है उसे ही जीवन दान देने का सकल्प भी लेना चाहिए, जो जीवन को आघात पहुँचाता है उसे स्वयं सेवा शुश्रूषा का भार वहन करना चाहिये।

दूसरों को गिराकर स्वयं चैन की वन्शी बजाना मानवता नहीं है माँ .. .. आओ देखो क्या दशा हुई है तुम्हारे द्वारा उसकी... . ...शायद एक बार तुम भी पसीज उठो।

जिस समय हम भानुदेव के कक्ष में पहुँचे, उसने उठने प्रयत्न किया पर नर्स ने रोक दिया, शीरी को देखकर उसने कहा,—"आजा बेटी, तूने मुझे क्यों बचाया, उस

शरीर का क्या लाभ जिसका सब श्रंगार लुट चुका हो ।"

नई माँ सम्भवतः आवाज पहिचान रही थी, वह चेहरे पर दृष्टि गड़ाकर खिचड़ी जैसे बालों में परिचित सी आकृति को खोजने लगी और तत्काल प्रौढ़ से नेत्र मिलते ही वह घायल हिरणी की भाँति सहम उठी...

"कौन ··· कौन ·· तुम तुम भा ·· ।" भास्कर का ध्यान आते ही, उसकी ज़बान पर ताला गल गया और भानुदेव पर तो जैसे फिर पागल पन सवार हो गया था, वह भारी चोट से कराहता हुआ भी अट्टहास कर उठा—"हाँ, मैं भानुदेव, पहिचाना तुमने ···काल ठोकर मार मार कर मुझे तुम्हारे सामने ही ला पटकता है······।" भानुदेव की बात पूरी होने से पूर्व ही मूच्छित होती हुई नई माँ को भास्कर ने झपटकर ज़मीन पर गिरने से बचा लिया । सब आश्चर्य चकित अवाक् और किंकर्त्तव्य विमूढ़ से देख रहे थे । मैं मन ही मन में काल की दशा पर विचार करने लगा । भास्कर बुद्धिमान था तुरन्त दो नर्सों का प्रबन्ध कर डा० के परामर्श से नई माँ और बाबा को कोठी में पहुँचवा दिया ।

× × × ×

संस्था के कामों से कुछ दिन मैं इतना व्यस्त रहा कि उधर का कोई समाचार न जान सका । तनवीर मेरे पास नित्यप्रति ही आता । एक दिन उसे घर लौटने में कुछ विलम्ब होने पर, उसके डैडी के कहने पर खोजती खोजती शीरीं मेरे घर आयी; उसने भानुदेव की स्वस्थता समाचार का दिया । पता चला भानु ने जहाँ स्वास्थ्य

लाभ किया वहीं आने जाने वाले अनेक भक्तों की श्रद्धा भी प्राप्त करली है। घर के सभी व्यक्ति उसकी सेवा को प्रस्तुत रहते हैं और शीरी तो दिन में एक बार अवश्य ही जाती है क्योंकि भानु उसे अपनी बेटी की तरह प्यार करने लगा है। सुना भानुदेव ने जब जब चलने का नाम लिया तो भास्कर और शीरी ने उसे जाने नहीं दिया, क्योंकि भास्कर जानता था बाबा नहीं रहेंगे तो शीरी के दर्शन भी दुर्लभ हो जायेंगे। शीरी न आयी तो उसकी रातों की नींद उड़ जायेगी। शीरी ने कई बार भानु के समक्ष प्रस्ताव रखा कि "बाबा तुम हमारी संस्था में चलकर रहो, तुम्हारी विद्या से और अधिक व्यक्ति भी लाभान्वित होंगे।" पर बाबा ने मुस्कराकर हमेशा उसकी बात टाल दी थी। जिसके लिये वह बड़ी गम्भीरता से कहता था— "दूसरे स्थान पर जाने से विद्या का सम्मान घट जाता है, कुआँ प्यासे के पास नही जाता बेटी प्यासा कुआँ के पास आता है। मुझे किसी के पास क्या जाना?"

भानु के इस दर्द के पीछे छिपे रहस्य को मैं जानता था किन्तु शीरी इसको स्वाभिमान जान पूज्य भाव बढाती जा रही थी, मैं मन ही मन मुस्करा रहा था "जादू सिर चढ़ कर बोलने लगा है।"

किसी दिन मैं, तनवीर और शान्ता नई माँ का कुशल क्षेम जानने के लिये भास्कर भवन पहुँचे? नई माँ, नौकर चाकर सभी अत्यन्त प्रसन्नता से स्वागत हेतु दौड़ पड़े किन्तु भानु न तो प्रसन्न ही हुआ और न ही स्वागत की औपचारिकता निभा सका जब कि
वह पूर्ण स्वस्थ हो चुका था। मैंने शान्ता की ओर

देखा, शान्ता ने केवल मुस्कराकर ही मुझे तुप कर दिया, "दान पर पुनः अधिकार नहीं होता स्वामी, हम यहाँ कुशल क्षेम पूछने आये, आतिथ्य ग्रहण करने नहीं और अतिथि हैं भी तो बस अतिथि, जिसका घर पर अधिकार नहीं होता, और नहीं वह घर के व्यक्तियों से बल पूर्वक कार्य ले सकता है।

शान्ता की निस्पृहता पर मैं मुग्ध था भानुदेव सुन्दर रेशमी, गेरूआ, उत्तरीय धारण किये हुये, तैलयुक्त लम्वे काले घुंघराले केशों से सजा हुआ, स्वस्थ सुन्दर सुष्ठु गोरा लम्बा सुन्दर शरीर लिये अज्ञात देव पुरुष के समान दिखलाई पड़ रहा था, पता नही उसके खिचड़ी से बालों से सफेद बाल कहाँ गायब हो गये थे। यह एकाएक कैसा निखार था। मैं सोचने लगा कितना अन्तर है हॉस्पिटल वाले और आज के भानु में। तपस्वी लोग पता नहीं क्यों कुटुम्ब और परिवार छोड़कर एकान्त श्मशान सेते हैं और कष्ट दे देह को जर्जर कर व्यर्थ ही आत्मलीन होने का प्रयत्न करते हैं मद में भावनाओं का तार छिड़ गया था तब तक शान्ता के साथ चलता चलता मैं भानुदेव के समक्ष जा पहूंचा मैं जानता था शान्ता भानुदेव की अपेक्षा कितनी महान है, पर कह नहीं सकता यह शान्ता की विनय थी या औपचारिकता अथवा भानु अहं पर व्यंग्य, शान्ता ने झुक कर उसे प्रणाम किया, मुझे और तनवीर को भी झुकना पड़ा किन्तु तनुवीर के चेहरे पर स्पष्ट ही अनमना पन था और शोरष शीरी ने वह भेद खोल ही दिया, संयोग से जो उसी समय बाबा से मिलने आ गई थी। उसने शान्ता को सम्बोधित करके कहा, आनन्दमयी माँ आपके सम्मुख सहस्रश; साधक और बुद्धिजीवी नतमस्तक होते है, निश्चय ही हमारे बाबा कोई बड़े सिद्ध हैं जो आप इनके सामने झुक रही हैं।"

भक्तजन आने लगे थे। हृदय की किसी टीस को दबा कर शान्ता मुस्कराई और कहा—

"तेरे बाबा निश्चय ही बड़े हैं शीरी! मेरे तो वे पिता के समान हैं, इनकी साधना भी कुछ कम नहीं थी ...." शान्ता का स्वर भरभराने लगा और कठोर-सा लगने वाला भानु भी पलकों को भिगोने लगा था, जैसे उसका मन अन्दर ही अन्दर शान्ता के पैर पकड़ रो रोकर प्रायश्चित के लिए व्याकुल हो उठा हो। किन्तु ज्वार से पहले ही शान्ता आगे बढ़ चुकी थी और भानुदेव स्वयं को उलझाने के लिए आगन्तुक भक्तों में उलझ गया था। हम वहाँ अधिक न ठहरे, न जलपान किया क्योंकि स्पष्ट था कि नई माँ अन्दर ही अन्दर गलती जा रही थी। शीघ्र ही कुशल क्षेम ज्ञात कर तनु की अस्वस्थता का कारण बतला लौटने का उपक्रम किया।

भास्कर अबोध बालक की भाँति सारा दृश्य देखता रह गया, उसका मन बहुत कुछ खोजने की चेष्टा करता पर वह जान नहीं पाता। भला प्रकृति अपने रहस्य किसी पर प्रकट होने देती है। जब भास्कर की दृष्टि छिटकी और शीरी पर जा पड़ी, वह सौन्दर्य सागर की उत्तुंग लहरों में डूबता उतराता रहस्य को जानने की क्रिया भूल गया।

× × × ×

सांस्कृतिक कार्यक्रम के प्रदर्शन ने तनु को पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कराई थी, अनेक महिला-मण्डलों से उसे आमन्त्रण आने लगे थे। अनेक सांस्कृतिक आयोजनों में उसका बुलावा रहता था अपने उत्तेजक भाषणों से वह जन मानस पर अधिकार करती जा रही थी। यदि यह कहूं कि विश्व

की शीर्षस्थ नारी स्वर्गीय जवाहर की बेटी प्रियदर्शिनी इन्दिरा यदि जन मानस की राज हंसनी बनी थी तो तनु भी उस समय अनेक सभा सोसाइटियों की शोभा बन चुकी थी।

अनेक राजनीतिक पार्टियों ने उसे अपने वैचारिक स्तर पर लाने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये थे। सब जानते थे कि तनु का आकर्षक व्यक्तित्व तथा असाधारण प्रतिभा जहाँ नारी जगत पर अधिकार रखती है वहाँ तनवीर और तनवीर के व्यक्तित्व से आकृष्ट होने वाले व्यक्ति भी उससे अछूते नहीं है। युवा मण्डलों में तो जहाँ उनके विषय में कुछ चर्चाएं छिड़ने लगी थीं, वहीं किन्हीं अँशों में वे युवा शक्ति के अनुकरणीय प्रतीक भी समझे जाने लगे थे। प्रत्येक राजनीतिक, नारी समुदाय, अल्प सँख्यक समाज और युवा वर्ग का पक्ष प्राप्त करने के लिए तनु को आमन्त्रित कर उसकी प्रसन्नता के लिए पर्याप्त धन लुटाने के लिए तत्पर रहता था।

तनु को आमन्त्रण और भाषण की लत-सी पड़ती जा रही थी और इस कारण जहाँ वह असह्य समय के लिए हमसे अलग रहने लगी थी वहीं अब बिमार भी पड़ी हुई थी। बेटी की प्रसिद्धी और लोकप्रियता जहाँ मुझे आनण्दमयी भावुकता में बहा ले जाने का प्रयत्न करती वहीं शान्ता की विवेक प्रस्तुत आशंकाएं मुझे चिन्तित भी करने लगती थीं पर मीठी झड़पों के बाद शान्ता का कथन "जैसा भी होगा ठीक ही होगा, गुरुदेव ठीक ही करेंगे।" मुझे आश्वस्त कर देता।

अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति तनु के स्वास्थ्य का समाचार

जानने के लिए आते, चिन्ता प्रदर्शित करते और चले जाते। कांग्रेस दो भागों में बँट गई थी। इन्दिरा जी की लोकप्रियता दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी उसी प्रकार तनु के भाषणों की माँग जनता और नेताओं की बेकली को ज्यादह से ज्यादह बढ़ाती जा रही थी, मैंने अनुभव किया "वास्तव में परमात्मा जो करते हैं ठीक ही करते हैं।" तनु का इस समय बीमार पड़ जाना ही उसके लिए वरदान है। लोक प्रियता जहां जीवन में उत्साह का संचार करती है वही कभी--कभी लोकेषणा और महत्वाकाक्षाँओं के भयंकर अन्धड़ उड़ाकर अहंकार की धूल से अन्धा बना क्षुद्रता और अज्ञान के गर्त्त में धकेलकर जीवन को निराशाओं में बुझा बुझाकर मशाल भी कर देती है।

सेठ धनपत राँय जो लोकसभा की सीट के लिये चुनाव लड़ रहे थे, फलों की कण्डी खुद हाथों से उठाये अपनी इम्पाला से उतर कर घर में प्रवेश कर रहे थे। शान्ता अपने स्थान पर बैठी रही। उनके आगमन का यथार्थ कारण जानते हुये, कुढ़कर भी, औपचारिकता के लिये मैंने उठकर अभिवादन करते हुये मुस्कराकर ही स्वागत किया, और वे आत्मीय जनों की भाँति प्रसन्न दिखलाई पड़े, जबकि बाद में उनके डॉयलोग का संकेत था कि वे तनु बेटी की अस्वस्था से चिन्तित होकर पीला पड़ गये थे। मैंने मन ही मन भगवान से पूछा कि मानव जीवन के मसीहाओं यमराज सहोदरों डाक्टरों ने ऐसी पुण्य आत्मा को खुला क्यों छोड़ दिया है, ये देश रक्षक, समाज के महान सेवक, महापुरुष ही देश को ऊँचा ले जा रहे हैं इन्हें कुछ हो गया तो मानवता की गोद सूनी रह जायेगी।

इन्हीं योग्य बन्धुओं के प्रसाद से तो देश नैतिकता के नये

आदर्शों को छू रहा है जहाँ पुराने सिद्धान्तों के साथ सभ्यता दम तोड़ चुकी है मानवता के नये मूल्य जन्म ले रहे हैं. गरीबी और गरीब दोनों मिट रहे हैं। भेदभाव दूर हो रहे हैं, ऊँच नीच समाप्त हो गई, किसी को किसी का डर नहीं, आम लोगों को शक्ति प्रदर्शन का खुला अधिकार मिला है। पहले विद्वान लोगों के नियन्त्रण में मूर्खों को अपनी भावनाएँ दबाकर रहना होता था किन्तु आज मूर्ख भी बराबर का दावा कर सकता है।

विज्ञान की प्रगति हर चीज उपलब्ध कराने की क्षमता रखती है। भावुकता को छोड़ हर वस्तु यथार्थ और व्यवहारिक उपयोगिता के माप दण्ड से नापी जाती है मानव भावुकता को नहीं यथार्थ को देखकर चलता है। महगाई हमारी वैभव सम्पन्नता का प्रदर्शन करा रही है, जिस वस्तु को कभी दो पैसे की खरीदा करते थे आज रुपया देकर ख़रीदते हैं। देश में रामराज्य है, न भ्रष्टाचार न चोर बाजारी और न रिश्वत खोरी। शासन की कलों पर मंत्रियों के हाथ है और मन्त्रियों पर पार्टी के व्यक्तियों के अधिकारी वर्ग उनकी मन-मर्जी पर चलने के लिए विवश है, आज कानून कठोर नहीं सहानुभूति पूर्ण है, लचीला है। संस्कृति और कला के मर्मज्ञ ये महान अध्येता हर रात को बिजली की चमक में सुनहरी शराब की घूंटों से इसे पूर्ण और कैबरों से रंगीन बना देते हैं राजा इन्द्र के इन अखाड़ों को देखकर ऐसा कौन है जो न कह उठेगा, "धरती पर यदि स्वर्ग कहीं है तो यही है, यही है, यहीं है।"

क्योंकि इन स्वर्गीय गीतों को स्वर प्रदान करने वाली सरगमें, निर्धन, निरुपाय, विकल, अपोषण के शिकार, बेरोजगार शोषितों और पीड़ितों के करुण, क्रन्दन से निकलने

वाले संगीत पर तैयार की जाती है।

धन्य है नेता, धन्य है इनकी अनासक्ति. विरक्ति, धन्य है इनका निर्मोह और धन्य है इनका वह ब्रह्मज्ञान जो सुख और दुःख में इन्हें स्थिर विवेक के साथ चैन की वंशी बजाने की प्रेरणा देता रहता है।

सेठ धनपत राँय ने हीं मौन को तोड़ते हुये अर्थ भरा प्रश्न किया—"तनु बेटी कहाँ है, अरे उसके लिये तो सारा क्षेत्र चिंतित है, सब उसके दर्शनों की आशा लगाये बैठे हैं, सौ बेटों के बराबर एक बेटी है आपकी, नाम रोशन कर दिया है आपका!"

मैंने फीकी मुस्कराहट के साथ—"जी जी, यह तो आप लोगों की कृपा का ही फल है जो आज इस हालत मे हैं वरना उसकी सामर्थ्य कहाँ कि आज के लोगों में नेतृत्व पा सके।"

उन्होंने खीसे निपोरते हुये कहा—

"ही, ही ... बुरा न लगे, तो मैं भी दर्शन लाभ उठाना चाहता हूँ और हाँ ... ...बिटिया से मुझे भी कुछ बातें करनी हैं ...।"

मुझे कहना ही पड़ा, "आइये, आइये, क्यों नहीं ?" आपकी ही बेटी है।

तनु के चेहरे पर गर्वीली मुस्कान दौड़ गई थी। उसने सेठ का अभिवादन कर मेरी ओर निहारा और इससे पहले कि उसकी गर्वभरी मुस्कान का उत्तर दूँ सेठ जी ने मेरे मुँह के शब्दों को छीन लिया —

"कितनी महान हैं आप, बड़ों का आदर तो कोई आप से सीखे, बच्चे-बच्चे की जबान पर आपका नाम है। हिन्दु महिलाएँ तो आप पर गर्व करती हैं, हिन्दु राष्ट्र

का निर्माण भी आप जैसी विदुषियाँ ही कर सकती हैं क्योंकि आप स्त्रियों में प्रेरणा भर देती है। एक स्त्री तो एक पूरा परिवार होती, है, आप चाहें तो सम्पूर्ण हिन्दु समाज में पुनर्व्यवस्था ला सकती हैं। आपके श्लोक, आपके कुटेशन, आपके उदाहरण, आपका ज्ञान.. ..... ।"

शायद धनपत रॉय भाषण के मूड़ में आ गये थे उन्होंने ओठों पर जीभ फिरा मेरे मुंह की ओर देखा—और मैंने शान्ता से एक गिलास जल ले आने आने के लिए कहा ....
क्योंकि मैं जानता हूं कि भावावेश में कुछ लोगों को खुश्की आ जाती है और उन्हें ठण्डा करने के लिए जल ही जीवन का काम करता है।

शान्ता जब पानी लेकर आई, सेठ जी भाषण की चरम सीमा पर पहुंच चुके थे उन्होंने उच्चस्तर के नेताओं के लिए भी अपशब्दों एवं मिथ्यारोपों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया था। वे वर्तमान शासन को बुरा भला बतलाते हुये कह रहे थे—

"सब बंटाढार कर दिया है इन लोगों ने, सभी कुछ भृष्ट कर दिया है, खुले आम गौ हत्या होती है, आप जैसे साधु महात्माओं का आदर नहीं, अधर्म का बोल बाला है, धर्म को मिटा दिया, अगर मैं कुछ होता तो "शान्ता कुञ्ज' जैसे नैतिक स्थान को न जाने क्या-क्या सहूलियत दिलवाता। पर इन लोगों ने तो संस्कृति को ही मिटाने की सोच ली, धार्मिक स्थानों की पूरी अवहेलना की जाती है।

चोर और डाकू बढ़ते जा रहे हैं जो काम अंग्रेजों और मुगलों के शासन में न हो सका था वो काम इस निकम्मी

.... सरकार के राज्य में हो रहा है, सिर पर

चोटी नहीं, माथे पर तिलक नहीं गले में जनेऊ नहीं, राम का नाम नहीं सब मलेछ होते जा रहे हैं। जब बड़े लोग ही विजातियों से ब्याह रचाने लगे तो..........यथा राजा तथा प्रजा। आप जानते हैं हम पर कैसे-कैसे आक्रमण हुये, विदेशियों ने हमें कैसे मिटाया और हम फिर भी उन्हें अल्प सँख्यक कहकर दया दिखला रहे हैं। मुहम्मद गौरी को फिर जिन्दा कर रहे हैं, मैं सोचता हूं, बेटी.......... मैं और मेरी पार्टी के लोग अगर एक बार ऊपर पहुंच गये तो धर्म की स्थापना में कोई कोर कसर न उठा रखेंगे।"

शान्ता पानी देकर चलने को थी कि तनु ने रोका "माँ क्या आज दवाई नहीं दोगी.........मेरा सिर भन्ना रहा है।"

सेठ ने यकायक बीच में टोक कर कहा, "क्या दवाई दे रहे हो बेटी को, पुड़िया देखकर उन्होंने कहा—

"अरे यह तो किसी वैद्य सेध की दवाई है किसी डाक्टर को नहीं दिखाया आपने, कितनी अनमोल जान है इनकी कीमत आप क्या जाने ....सुनिये ....मैं प्रबन्ध करता हूं ....।"

मेरे रोके न रुके, उठकर द्वार पर पहुंचे, रोबीली आवाज़ में ड्राइवर को हुक्म दिया ... ... "जाओ डाक्टर को लेकर आओ।" उनकी चुस्ती और दयालुता पर मैं कुसमुस कर रह गया।

तनु का मुड बिगड़ता देख शान्ता फुसफुसा रही थीं..... .. .."लोक प्रियता इतना शीघ्र नहीं छोड़ती बेटी उसकी कीमत इस तरह भी चुकानी पड़ती है।"

धनपत राय की लोटस देख तनु का मुख लाल हो गया। सेठ ने पुनः बैठने का उपक्रम करते हुये अपना सिलसिला

जारी कर दिया—

"हाँ तो देवी ! मुझे पूरी आशा है कि इस धर्म युद्ध में अवश्य ही तुम हमारे साथ रहोगी।"

किन्तु तनु के एक ही प्रश्न पर वे ऐसे चौंक पड़े जैसे हवा के एक ही झोंके से ताश का महल ढह जाता है—

"मैं धर्मयुद्ध में सापके साथ हूं किन्तु मुझे धर्म का अर्थ समझा दीजिये ताऊ जी।"

इस एक ही प्रश्न षर वे बगलें झांकने लगे थे, फिर भी खिसियाहट को हसी में झुठलाने की कोशिश करते हुये कहा— — — "अरे मुझे क्यों बना रही हो बेटी.........
...ताउ से भी हंसी करने चली है, कितनी शाख है
हा......हा......हा...... हा "

किन्तु अब की वार तो वे एक दम भयभीत हो उठे जबकि तनु ने कहा—

"मैं दिल्लगी नहीं करती सेठ जी, आप समान व्यक्ति से मजाक करना मुझे नहीं सिखाया गया और न यह धर्म ही है। यदि आप नहीं बता सकते तो मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप इस विषय पर बात न करें यह विषय आपका नहीं है। धर्म की ओट में तीर चलाना ठीक नहीं हैं। परम्परा से प्राप्त रूढियों का नाम धर्म नहीं धर्म किसी एक समुदाय, सम्प्रदाय या समाज सम्बन्धी वस्तु नहीं, धर्म अपने आप में असीम और शाश्वत है. राजनीतिक गुटों के स्वार्थ की टकराहट नही। धर्म के शाश्वत सिद्धान्त किसी एक के बाप की बपोती नहीं। धर्म हिन्दु, मुसलमान, सिख पारसी इसाई–मानव मात्र के लिये एक ही है और सुनिये चौंकिए नहीं —
...
भूखे पेठ का कोई धर्म नहीं होता

भूखा- भूखा ही है चाहे वह रोटी का भूखा हो, चाहे धन का भूखा हो, पद का भूखा हो, कुर्सी का भूखा हो। धर्म सन्तोष से होता है। धर्म उनकी रक्षा करता है जो उसकी रक्षा करते हैं, धर्म उनको तृप्त करता है जो उसको तृप्त करता है, तृप्त वही कर सकता है जिसमें तृप्ति और तुष्टि हो। जो स्वय एषणाओं में छटपटा रहा हो वह दूसरों को तृप्त कैसे कर पायेगा, वह धर्म की रक्षा क्या कर पायेगा ······? भूखे पेटों को भक्ति सिखलाने का ढोंग छोड़ दें।

समाज में बलात भूख पैदा करके आप धर्म चाहते हैं, आज का इन्सान भूखा है इसे धर्म नहीं सुहाता यह उसे ढकोसला दिखाई पड़ता है, ऐसे नारे उसे थोथे लगते हैं इन्हें सुनने के लिए वह तैयार नहीं और न ही मेरी आत्मा ऐसे राग अलापने के लिए तैयार है, जिसे मेरी आत्मा न माने वह कहने का ढोंग मे नहीं कर सकती।

यदि धर्म की रक्षा चाहते हो तो पहिले भूखों की भूख मिटाने का प्रयत्न कीजिए, यही आन्दोलन छेड़िये, समाज का आर्थिक वैषम्य दूर कीजिये। भूख के कारण बिलख कर प्राण देते बुभुक्षितों को आपत्काल में धर्म की दुहाई देकर और न तड़पाइये।

धर्म पालन का भार सरकार या कानून पर नहीं और नहीं वे हम से यह करा पाने में समर्थ हो सकते जब तक कि हम स्वयं उसमें प्रवृत्त होकर उसे शास्ता न मान लें। धर्म स्वयं एक शासन है जिसका नियन्त्रण मनुष्य की आत्मा पर होता है, आदमी उसे अन्धेरी कोठरी में भी मानता है और कानून की आंखों से दूर रहकर भी आदमी कानून से बच सकता है धर्म कुर्सियों की अदौड़ या सत्ता

की हाथापाई में नहीं मिल सकता।

क्योंकि ये सब भी भूखे हैं। सत्ता के द्वारा मनुष्य आराम के साधनों पर एकाधिकार को धर्म समझता है। आराम के लिये वह दूसरों का आराम हराम कर देता है और हरामी जीवन से तो अधर्म का विष वृक्ष ही फलता है। जब तक इन्सान का महनत में विश्वास नहीं वह धर्म का पालन नहीं कर सकता। जब तक उसे महनत कशों का सम्मान करना नहीं आता, तब तक वह पतस्वी ऋषियों की प्रतिष्ठा को कायम रखना नहीं सीख सकता, तपस्या या श्रम बिना प्राप्त वस्तु केवल अधर्म है अधर्म। आज तो इन्द्र का पद बिना तपस्या के प्राप्त करने की दौड़ लगी है, ये त्रिशकु और नहुष क्या धर्म का पालन कर सकेंगे? धर्म का महल अधर्म की नींव पर टिकना असम्भव है।

मत, सम्प्रदाय, पंथ, समाज और विभिन्न विचारों तथा रूढ़ियों की टकराहट में धर्म का चूर्ण न पीसिये ताऊ जी!"........कहते कहते तनु तमतमा उठी थी, उसे पसीना आ गया था और कृशता से बेहद सांस फूलने लगा था, वह निढाल होकर विस्तर में गिर पड़ी।"

सेठ ने झेंप मिटाने के उपक्रम में उठने की चेष्टा की "........ओ हो...... इसकी तबियत तो बहुत खराब है, क्या दौरे पड़ते हैं इसे.........?"

मैंने कहा "नही.........। आइये, चलिये दूसरे कमरे में बैठे ...।"

सेठ जी ने मुख के कड़वे स्वाद को ठीक करने का सा असफल प्रयत्न करते हुये कहा ...."नहीं............क्षमा कीजिये आपको बहुत कष्ट दिया .... -... ... ...अब मैं चलता हूँ............।" सहसा एक टैक्सी आकर रुकी,

तनवीर ...... और आकर अभिवादन किया, सेठ जी ने

उस टैक्सी से निकल जाना ही उपयुक्त समझा। तनवीर की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखते हुए, "कौन है?" कहने पर मेरा उत्तर "तनवीर, मेरा, विद्यार्थी, तनु का मित्र .... जिलाधीश का सुपुत्र.. .. ।"

पूरा सुने ही विना टैक्सी में जा घुसे। वे बड़बड़ाते रहे और टैक्सी धमाक् से ऐसे आगे सरक गई जैसे उसके इंजिन को कोई दिमागी झटके लगे हों।

× × × ×

सेठ के चले जाने के बाद तनवीर ने बहुत दिलचस्प बात बतलाई जिसमें उसकी धर्म निरपेक्षता युक्त निस्वार्थ भाव ही लक्षित हुये। उसने बतलाया, सेठ धनपरॉय, भास्कर सैयद मुर्तजा मीरकासिम, मिर्जा साहब और मौलाना शगूर कल हमारे यहां आये थे और मेरी ममेरी बहन शीरी को हिन्दी कन्या कालिज में आर्ट लेक्चरर का पद सम्भालने के लिये अनुनय विनय कर रहे थे। तनवीर के डैडी की अनिच्छा पर भी उन्होंने शीरी को प्रशंसा युक्त शब्दों से प्रसन्न कर राजी कर लिया और हाथों हाथ नियुक्ति पत्र भी द गये क्योंकि धनपत रॉय जी ही कॉलिज के प्रबन्धक है।

शीरी आज बहुत खुश थी और कालिज गई थी, आकर्षक बात है कि शीरी को लेने भास्कर आया था जो अपनी कार में उसे स्कूल छोड़ने गया है।

सेठ जी को यहाँ देख उसे भ्रम हुआ था कि शायद तनु के लिये भी वे ऐसा ही कोई प्रस्ताव लेकर आये होंगे। उसने कहा यदि यह सच हो सकता है तो इसको रोकने के लिये

वह शान्ता और मेरे न [illegible] सर पटक कर [illegible] दे देगा। तनवीर की बात पर आश्चर्य चकित [illegible] मैंने उस कुरेदने कें लिये प्रश्न किया—"क्योंकि ऐसी क्या बात है।"

"मेर गवाही नहीं देता।"

"आखिर क्यों ?"

"मुझे ये लोग अच्छे नहीं लगते ?"

"लोगों का अच्छा न लगना तो कोई अच्छी बात न हुई. और न ही समुचित कारण, यह तो रुचि भेद भी हो सकता हैं, मतिभ्रम या गलत दृष्टिकोण भी।" तनवीर सकित हो उठा, उसका मुह उतर गया, वद हवासी में कुछ शब्द उसके मुह निकले—

"क्या तनु राजी हो गई ?" वह कातर दृष्टि लिये शान्ता की ओर दौड़ पड़ा।"

"आनन्दमयी माँ, वे लोग अच्छे नहीं हैं। उनका हर आडम्बर स्वार्थ के लिए होता है, वे राजनीतिक पुरुष...... ......उनके प्रत्येक कार्य में कोई रहस्य छिपा रहता है। कुर्सी के लोभ में वे कुछ भी कर सकते हैं, बिना लाभ के यह कोई काम नहीं करते। वे दानी नहीं, दयालु नहीं, त्यागी नहीं, सन्त नहीं, मानवता के लिये घर लुटाने वाले नहीं; अगर होते तो क्या शोषण की दीवारों पर, इतनी बड़ी अट्टालिकाएँ बात बनाकर पड़ौसी झोपड़ियों में बिलखिती हुई असंख्य उठरियों का मजाक उड़ा अपनी तुंदिल देह को हंसी से खिलखिलाने की चेष्टा करते। बोलो मां बोलो, क्या आपकी आत्मा गवाही देती।"

तब तक तनु भी बाते सुनकर उठकर चली आई थी और उसका नाटकीय आवेश [illegible] त

थी शान्ता ने उसे आश्वस्त करते हुये कहा ....

"नहीं .... नहीं, तनवीर तुम ऐसा क्यों सोचते हो. माँ और वेटे के विचारों मे क्या अन्तर हो सकता है ? क्या तुम मेरी ही आत्मा नहीं हो, मेरी आत्मा को साक्षी क्यों बना रहे हो, तुम्हारी आत्मा क्या दृढ़ निश्चयी नहीं, यदि ऐसा है तो मेरी संस्था की स्थापना का आदर्श ही क्या रहा। हमारा संकल्प ऐसे विद्यार्थी तैयार करना नहीं जो मनोबल से कमजोर हो......।"

जैसे भयंकर अग्नि पर किसी महान समुद्र के ज्वार से उछाली गई असंख्य जल राशि आ पड़ी हो। तनवीर हतप्रभ था, आगे कुछ बोल न सका। मैंने उसे अधिक व्याकुल करना उचित न समझ रहस्य खोल दिया।

"हमने उनकी कोई बात नहीं 'मानी बेटी !" तनु भी तत्क्षण बोल उठा—"हाँ ...हाँ........तनवीर सच मानो .....।"

आगे कुछ कहना चाहती होगी पर लजाकर लाल हो गई, क्योंकि तनवीर की दृष्टि उसकी आंखों से टकरा गई थी और क्षण भर को तो हमारी उपस्थिति भूल बैठे थे मैं मन ही मन इसी गुत्थी को सुलझाने लगा कि वह तनवीर जो शीरीं को अपने अनुकूल न मना सका वह तनु के लिए इतना उत्तेजित क्या होगया।

× + × + ×

तनु के शब्दों से स्वयं को अपमानित अनुभव कर सेठ धनपराँय टैक्सी में बैठकर चल दिये। उनका अहंकार चोट खाए सर्प की भाँति फुफकार उठा, वह सीधे भस्कर के यहाँ

पहुंचे। उनकी गम्भीर मुद्रा देख भास्कर के साथ अन्य भी चिन्तित हो उठे। एक गिलास ठण्डा पानी कहकर वे धम्म से कोच में जा धंसे, और बाँये पर दाँया पैर रखकर उत्तेजना में काँपते रहे। किसी को कुछ पूछने का साहस न हुआ। ठंडा जल पीकर जब संयत हुए तो यथाशक्ति को सन्तुलित करते हुए, स्वर में मिठास घोलने का असफल प्रयत्न करते हुए उन्होंने कहा —

"स्वामी जी कहाँ हैं ?"

तब भानुदेव भी स्वयं ही वहाँ आ चुके थे—

"कहिये सठ ! किस लिये स्मरण हो रहा स्वामी का.........।" गम्भीर मेघ के मन्द गर्जन से हाल गूंज

औपचारिक ढग से सेठ जी ने हाथ जोड़ खड़े होकर अभिवादन किया और बिल- बिल करते ऊंट की तरह खिलखिला पड़े।

"आपका अमेरिका जाने का प्रबन्ध हो चुका है स्वामी जी ! भास्कर तो कारोबार में यहाँ मेरे साथ व्यस्त रहेगा भास्कर की माता ही आपके साथ जा सकेंगी- नौकर चाकर तो होंगे ही, कुछ और आपके शिष्य भी आपकी सेवा करेंगे उन्होंने अपना प्रयत्न कर देने लिए मैं अमेरिका लिख भेजूंगा। मैं समझता हूं वहाँ जाकर आपका काफी रँग जमेगा। आप जैसे योगी की ये भारत वाले क्या कदर करेंगे जो वहाँ होगी।

ये तो तभी आपके महत्व को समझेंगे, जब आप वहाँ से लौटकर आयेंगे, तब देखना आपके चेले चेलियों की भीड़.........मैंने भी आपको भगवान का अवतार सिद्ध न कर दिया तो मेरा नाम भी धनपतराय नहीं।

भगवान को पहिचानने वाला भी कोई कोई होता है

मैं तो आपको उसी दिन पहचान गया था जब भास्कर की माता ने अतीव प्रशंसा में कहा था कि आपने ही उनके जीवन को जीवन प्रदान किया है। भास्कर को मैं भी अपने बेटे के समान समझता हूँ इसके पिता मेरे परम मित्र थे।" उन्होंने भास्कर की ओर आत्म प्रशंसा से देखा—भास्कर ने तुरन्त मन लगती कही —

"मेरे इतने बड़े कारोबार की उन्नति के कारण बनकर आपने पिता की भाँति ही कर्त्तव्य निभाया है, सेठ जी! आपका एहसान मैं कैसे भूल सकता हूँ!" माँ के जरा से संकेत पर आपने बाबा के लिये कितनी बढ़िया योजना बनादी। आपके भेजे दो विदेशी घंटो बाबा के चरणों में मस्तक रगड़ते रहे, मना करने पर भी हाथ में सुनहरी घड़ी बाँध गये, और डालर्स भेंट दे गये, सारे भक्त वाह-वाह कर उठे। मेरे जरा से संकेत पर आपने शीरी को उसके फूफा के अहसान के बोझ से निकाल कर बिना इण्टरव्यू के ही प्रवक्ता बना दिया, इतना तो शायद पिताजी भी न कर सकते।"

चाटुकारिता से सेठजी फूल रहें थे किन्तु पुनः कुछ याद आजाने पर उद्वलित हो उठे। उनका स्वर कर्कश हो गया—

"पर आज वहां गया जहाँ होम करते भी हाथ जलते हैं.... तुम्हारे उन्हीं जीजाजी के यहाँ जो स्वयं भी अपने को भोला पार्वती के औतार समझते है पर लड़की भी मनसा देवी से कम प्रचण्ड नहीं।"

कुछ अप्रिय घटना की अशंका से संशकित भास्कर ने युक्तिपूर्वक घाव पर मक्खन लगाते हुये कहा—"सेठ जी वे तो छोटे लोग है, आप जानते है गरीबी के

कारण बहुत से लोग अर्द्धविक्षिप्त से हो जाते हैं, वह सही बातें सोच नहीं सकते, इनफिरीयोरिटी काम्पलेक्स (हीन भावना) के कारण ऐसे व्यक्ति हर वस्तु को शंका की दृष्टि से देखने लगते हैं। उन्हें क्या पता कौन अपना है कौन पराया। वह आपकी दयालुता को न समझ सके तो यह उनका नहीं उनके संस्कारों का दोष है।" तो भी सेठ ने निराश होकर कहा—

"लेकिन मुझे अब उनसे कोई उम्मीद नहीं, वहाँ से निराश होकर लौटा हूँ मैं, तुम तो अच्छी तरह जानते हो सरकार भी जानती है···मैं झुकने वाला आदमी नहीं हूँ ··पता नहीं लोग ऐसा क्यों भूल जाते हैं कि आजकल पैसा ही भगवान है, पैसे में बड़ी शक्ति है। निश्चय ही ऐसे मूर्ख भी होते ही हैं·· या जैसा तुमने कहा··· पागल।"

फिर कुछ याद करते हुये बोले—

"हाँ सुनो एक काम करना · फ्लोर मिल के नाम से जितना चाहो ज्यादह से ज्यादह अनाज खरीद लो मैं भी अपने एजंटों से कहे देता हूँ, मेरे अन्य मित्र भी सजग हो जायेंगे। अनाज की महगी से लोग बिलबिलाकर सरकार को खूब गालियाँ देंगे। जितनी सरकार को गालियाँ मिलेंगी उतने ही वोट हमारे पक्के। इसके ऊपर हम शहर में दानक्षेत्र खोलकर लोगों की प्रशंसा भी प्राप्त कर सकते हैं।" कहते कहते घनपत राय खिलखिला कर हँस पड़े। अन्य भी अपनी मिमियाहट को खिलखिला-हट में बदलने का यत्न करते रहे।

सेठजी ने सबको ऐसे घूरा मानों कोई नया परीक्षण करते समय देखना चाहते हो कि सामान्य जन ···

अलौकिक सिद्धांत को कुछ महत्व देते हैं या नहीं।

× × × ×

सेठ जी के जाने के बाद भास्कर बहुत आवेश में था, वह गैरज से कार निकलवा सीधा "शान्ता कुंज पहुंचा उस समय मैं और शान्ता वहाँ नही थे। लौटने पर जो दृश्य देखा वह अच्छा नहीं था।

तनवीर और भास्कर आपस में गुंथे हुए थे, आसपास के बहुत से लोग इकठ्ठे होने लगे थे। भास्कर मर्यादा विहीन होकर अनाप शनाप चिल्ला रहा था---

"मैं तेरा खून पी जाऊंगा, मुस्लिम गुन्डे ... ..-- यह हिदुओं का घर है ... . तू यहाँ की इज्जत नहीं लूट सकता क्या अपने बाप को औरंगजेब समझ लिया है कि उसके निरकुंश राज्य में उसका साहब-जादा कुछ भी करे ... आज हिन्दू गुलाम नही, ईट का जवाब पत्थर से मिलेगा नीच ... ।"

वातावरण में भयंकर उत्तजना थी, बीना बात को समझे भीड के आदमी तनवीर पर आंखें लाल पीली कर रहे थे। मैं गुस्से से चिल्ला उठा ... .

"यह क्या तमाशा हैं ...."

भास्कर ने उसी आवेश में कहा ... .

"यह पूछो इस विश्वासघाती से, जिसे आप बेटा कह कर पुकारते हैं... ... . देवी के समान उस . . ।" बीच में मैं और तनु दोनों चीख उठे .. .. ।"

"बको मत .. .. निकल जाओ यहाँ से ....।"

निश्चय ही मैंने उसकी दुष्कल्पना का अनुमान लगा लिया

था। तनवीर शान्ता के चरणों पर गिरकर बिलख उठा। शान्ता ममता भरे स्पर्श से उसका सिर अपने वक्ष पर रख उसकी पीठ को सहलाने लगी और भास्कर क्रोध से चिल्लाता हुआ अपनी कार की ओर जा रहा था—

"ठीक है जीजा जी ·· आप मुझे धमका सकते हैं पर मैं चुप नहीं रहूंगा ··· ··· तनु अकेले आपकी बेटी नहीं कि आप अकेले उसे एक विधर्मी को सँभालकर निश्चित हो जाये, वह सारे हिन्दु समाज की धरोहर है। हम खून के आखिरी कतरे तक उसे विधर्मी के चँगुल में न फँसने देंगे, हिन्दुओं का शौर्य सोया हुआ नहीं है, इस जाति में नौ जवानों की कमी नहीं जो अपनी बेटी एक टुच्चे को सौंप दी— ··· ··· ··· ···धर्म की रक्षा के लिए हमें प्राणों की परवाह नही··· ··· ··· ·· यह मेरा और आपका नहीं धर्म का सवाल है।" घरर्रर करती कार में बैठकर वह वहाँ से चला गया, भीड़ के मस्तिष्क में वह पूरा जहर घोल गया था, अजीब आँखों से सब मुझे देख रहे थे। उनकी दृष्टि में मैं आसमान की ऐसी धूल थी जो हवा के किसी झोंके से ऊँचा दिखलाई पड़े पर अन्ततः जो गन्दी नाली का कीचड़ ही हो।

× × × ×

भास्कर घर पहुँचा, उसने फलों के रस से सूखे कण्ठ को तर किया और थकावट मिटाने की चेष्टा में कोच पर बैठना ही चाहता था कि टेलीफोन की घन्टी बज उठी, रिसीवर उठाते हुए धनपत रॉय खिलखिला कर कह रहे थे—

"खूब ! भास्कर तुमने कमाल कर दिया — — — मुझे तुम पर नाज है— — — अगर ऐसे ही काम करते रहोगे तो एक दिन आसमान पर छा जाओगे..................... मालूम है तुम्हारे नाम आज ही दस हजार डालर्स का चैक कट चुका है।"

स्वामी जी को तैयार रखना, वे अपने शिष्यों में धर्म का भली प्रकार प्रचार करें और धार्मिक क्रान्ति के लिए प्रेरित करें।"

सेठ जी से प्रशस्ति प्राप्त कर प्रसन्नता के आवेश में अपने बुद्धि कौशल पर मुग्ध भास्कर जब भानुदेव के कमरे की ओर उसे सुसमाचार सुनाने पहुंचा तो द्वार बन्द था, उसने स्वामी जी की ध्यानमग्न अवस्था का अनुमान लगा-कर ताले के छेद से देखकर निश्चय कर लेना चाहा, पर जो कुछ उसने देखा, देखकर सारा मान निरोहित हो गया। उसका सपना अधर में लटक कर ही सिसक कर दम तोड़ बैठा !

नई माँ भानुदेव की शैया पर थी, वे पड़ी हुई मुस्करा रही थी, भानुदेव चिन्ताकुल हो चहल कदमी कर रहे थे ....वे बोले.......।

"नहीं, नहीं कंचन ! मैंने तुम पर अपना सारा जीवन सारी साधना, अपना सब कुछ लुटा दिया है, आगे मैं ऐसा नहीं करूंगा ....।"

नई माँ नागिन की भाँति फुंफकार उठी..........

"क्या कहते हो भानुदेव ! तुमने मेरे लिये अपना जीवन बर्बाद किया है या मैंने प्रेम के इस अपावन अनुष्टान में अपने जीवन और पातिव्रत्य की आहुति दी है। तुम सोचते हो पुरुष जो करता है वह पुण्य होता है और स्त्री

जो करती है वह सब पाप.......... तुम स्वयं को तपस्वी और पुण्य आत्मा समझते हो और मुझे पतिता "

भानुदेव एकाएक घबरा सा उठा, मनुहार सी करके बोला—

"नहीं, नहीं कंचन ऐसा नहीं, प्रेम की नदिया में जीवन नौका उतारने वाले हम दोनों ही हैं किंतु असंख्य लोगों के क्रन्दन से उत्पन्न पाप की आग इसे जलाकर समाप्त कर देगी और प्रेम का जल कभी भी समाप्त न होने वाले आँसुओं में बदल जायेगा... ...।"

नयी माँ व्यंग्यात्मक मुस्कान खींचकर बोली...

"क्या प्रेमी भी आँसूओं से घबराते हैं भानुदेव। जानते हो कितने आँसू बहाकर मैंने तुमको और कितना योग साधकर तुमने मुझको प्राप्त किया है।"

भानुदेव विष की कड़वी घूँट सा सटकते हुये बोला, वह तिलमिला उठा।

"क्या कहती हो कंचन .... योगी की साधना का उद्देश्य तुम जानती भी हो ..?"

"हाँ भानु! हाँ, प्रेम योग की साधना का यही उद्देश्य है।"

"किन्तु मेरे जीवन की दिशा बदल चुकी थी कंचन!"

"जीवन की दिशा तो मेरी भी बदल चुकी थी भानुदेव! "यदि तुम आध्यात्मिक साधना के दिये जला रहे थे तो मैं पतिव्रत्य के पावण अनुष्ठान की पुजारिन बन गई थी। तुम्हारा कोई गुरु था तो मेरा भी कोई पति था। तुम्हारा गुरु तुम्हें न सँभाल सका और मेरा पति मुझे न सँभाल सका! दोनों के मन उड़ते रहे, बचपन की प्रीत भंवरों की गूंज और पराग के फूलों की कहानी

वन गई। तुम अतृप्त लालसा लेकर योग साधने बैठे और मैं उन्मत्त यौवन लेकर बूढ़े के साथ पतिव्रत निभाने। दोनों की असफलता निश्चित थी बाल्यावस्था से संजोयी वासना के ज्वार में सब कुछ समाप्त होगया। मुझे कोई दुःख नहीं दुःख तो इस बात का है कि तुम पुरुष होकर आज भी चंचल हो और मैं नारी होकर अचल। मैं अपनी माया का आनन्द उठाना स्वयं जानती हूं और तुम अपनी चेतना से व्याकुल रहते हो।"

नई माँ ने खड़े होकर सहसा भानुदेव के गले में बाँहे डालकर आँखों में आँखें डालते हुये कहा "भानुदेव! तुम्हें मेरे सामने झुकना चाहिये, तुम्हारी साधना एक ढोंग है और मेरी साधना एक अचल विश्वास, प्रेम की जय।"

मेरा सम्बन्ध ऊँचे ख़ानदान, ऊँचे लोग और ऊँची बिरादरी से रहा, तुम थे तो मिल मालिक के बेटे, पर लोगों की दृष्टि न बदल सके। तुम्हारी चौखटों पर नाक रगड़ कर भी बड़े दिखलाई पड़ने वाले लोग यह न भूल सके कि तुम्हारे पिता किसी समय मामूली गुड़ पकाने वाले छोटी जाति के व्यक्ति थे। ऊँची जाति की लड़की का तुमसे प्रेम बर्दाश्त कर भी लिया जाता पर तुम्हारी अपार सम्पत्ति की स्वामिनी एक निर्धन बालिका बन जाए; इसे न तो ऊँचे लोगों ने बर्दाश्त किया और न छोटी जाति वाले तुम्हारे पिता ने।

तुमने सम्पत्ति को लात मारकर सँन्यास लिया तो मैं भी सह न सकी। पुरुष तुम एक ही तो नहीं थे और बहुत से मिल सकते थे, किन्तु ·· ··· ·· · परमात्मा ही जानता है कि मैंने··· ··· ··· ·· अपने प्राण रक्षक पति देवता को केवल तुम्हारे लिए बलि चढ़ाया। भानु! मैंने तुम्हारे लिये

पति की वलि दी और याद रखो ....तुम्हारे बेटे के लिये तुम्हारी भी वलि दे सकती हूँ, क्योंकि आदमी को मूल से ब्याज प्यारा होता है ...।" कहते-कहते नई माँ कठोर हो गई... ... ...और धम्म से पैर पटकती हुई, हतप्रभ भानुदेव को शैया पर धकेल द्वार की ओर आ फटाक से किवाड़ खोल वैठी.........जिसके सहारे टिका अचेत-सा भास्कर उसी क्षण उसके चरणों पर आ गिरा और रक्त की फुहार फूट निकली।

भानुदेव का ध्यान भंग हुआ और वह बेटे को छाती से लगाकर सिसक उठा।

× × × ×

सेठ धनपत रॉय द्वारा अनुदान से संचालित होने वाले दैनिक पत्र में अगले दिन लोगों ने पढ़ा --

"'भास्कर शुगर मिल के होनहार नौ जवान उद्योग पति की हत्या........... धर्म के नाम पर वींभत्स काण्ड ... .प्रतिहिंसा की भावना।

सहारनपुर ..—.. दिनांक .. .. छपते-छपते सूचना मिली है कि भास्कर शुगर फैक्टरी के युवा उद्योग-पति श्री भास्करानन्द को किसी ने गोली मार दी जिनको तुरन्त हॉस्पिटल ले जायेगा। डाक्टरों के मत से हालत सुधरने की सम्भावना कम है।

सेठ धनपत रॉय जी जीजान से उनके प्राणी की रक्षा में लगे हैं क्योंकि भास्करानन्द जहाँ चरित्र के धनी और जाति के गौरव थे वहीं एक प्रतिभाशाली व्यक्ति। वे युवा प्रतिभाओं को उभारने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहते थे।

सुना गया है किसी तनवीर नाम के मुसलमान युवक से उनका झगड़ा हो गया था जो जिलाधीश सलीम साहब का नाती है............... पता नहीं इस काण्ड में किसका हाथ है। यदि ऐसा धार्मिक प्रतिहिंसा के कारण हुआ है तो अत्यन्त लज्जा का विषय है।

हमारे जिलाधीश न्याय प्रिय और कुशल प्रशासक है आशा है वे अपराधी को किसी भी हालत में नहीं छोड़ेंगे।

नगर का दुर्भाग्य है कि भास्कर समान युवा काल के हाथों छिना जा रहा है, युवक आक्रोश से पागल हो रहे हैं, उन्हें शाँत रहना चाहिये।"

सेठ धनपत राँय के गुप्त कक्ष में सम्पादक चुन्नीलाल चौरसिया शराब की आखिरी प्याली लुढ़काते हुये बोले—

"बस सेठ जी! आज तो..... आपका नमक हलाल कर दिया.........हमने, लग जायेगी आग शहर में...... ... मजा आ जायेगा तुम्हें।" ' .. —और कहते कहते एक ओर को लुढ़क गये। सेठ के इशारे पर नौकर ने उठाया, और कार में डाल आया। ड्राइवर उन्हें सेठ के कर्जा से दबे उस चौरसिया भवन में डाल आया जहाँ किसी भी क्षण में ये प्लेट बदलते ही भवन का नाम बदला जा सकता था।

चुन्नीलाल शराब की खुमारी में अदभुत स्वप्न देख रहे थे।

चुन्नी लाल चौरसिया की पत्नी रूठकर मायके गई हुई हैं। किसी समय बहुत सुन्दर लेखक थे। चुन्नीलाल और चन्द्र चूड के नाम से लिखा करते थे, उनकी लेखनी में जादू था, पाठक एक एक पंक्ति पढ़कर भावविभोर हो जाते थे और उनकी रचनाओं के आदर्श से प्रेरणा ग्रहण

करते थे, उनकी कीर्त्ति कौमुदी फैल फैलकर उन्हें आनंदित करती रहती थी किन्तु··· ··· ···''मनमोदक नहीं भूख मिताई········· ।'' उनके हाथ यश तो लगा, पर उस पर प्राप्त होने वाला धन तो प्रकाशकों के भाग्य में लिखा था। उनमें स्वयं इतनी सामर्थ्य कभी न हुई कि स्वतन्त्र रूप से छपवा सकें, यदि एकाध बार प्रयत्न किया तो घर के गहने बिक जाने पर भी पुस्तक पाठकों तक न पहुँच सकी। तब से वे प्रकाशकों के चंगुल में फंस चन्द्रचूड से चूहे की तरह चुन्नीलाल तक आ पहुंचे। चौरसिया भी उन्होंने तब लिखना शुरू किया, जब कि फलों के रस में जीवन को घोलकर भुलाने की ताकत उनमें आ गई।

सेठ जी का वे बहुत उपकार मानते हैं कि उन्होंने उनका दामन खुशियों से भरकर रसों से सराबोर कर दिया। पर ये खुशियाँ बहुत देर से आई है जबकि उनकी पत्नी दाल भात के अभाव भरे जीवन में बलपूर्वक उनकी प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिये, घर की मर्यादा के नाम पर, सिसक सिसक कर दम तोड़ चुकी है; जिसे वह उसका रूठकर मायके जाना ही कहते हैं। अत्यन्त दुःख के आवेग में निकले ये शब्द उनके झुठलावे का चिरन्तन सत्य बन बैठे हैं।

बड़ी बड़ी आशाएं लेकर लाडों से पाली उनकी बेटी दो शब्द ''पिता जी मेरी चिन्ता आपको और आपके साहित्यिक आदर्शों को खा जायेगी।'' कहकर न जाने कहाँ चली गई, कह नहीं सकते जीवित है या मृत और तब से एकान्तवासी चन्द्रचूड इस महल के श्मशान में घुसते हैं तो उनका मुंह रस की घूंट और हाथ में कोई बोतल होती है किसी फिल्म की पंक्तियाँ दोहराते हुये

कराह उठते हैं—"इन्हीं लोगों ने ले लीना दुपट्टा मेरा।"

सम्पादक चुन्नी लाल नशे में धुत न जाने कल्पनाओं के किस अप्सरा लोक में पहुँचे हुये थे उन्हें अपने प्रेम और जवानी के वे क्षण याद आ रहे थे जब कि उनके पुरुष सौन्दर्य पर उनकी प्रेमिका पत्नी झूमझूम उठती थी।

किसी ने द्वार पर दस्तक दी, 'वह नशे की हालत में भयङ्कर सी गाली देता हुआ उठा··· ··· ······ ···, "सब नाश कर दिया ··—······सारा महल तो ऽ ऽ ड़ दि ऽ ऽ या कौ ऽ ऽ न है ऽ ऽ वे ऽ ऽ। सामने देखकर दंग रह गया। उसका सिर चकराने लगा उसे अनुभव हुआ जैसे वह किसी उड़न खटोले पर सवार होकर उड़ता-उड़ता बादलों के गद्दे पर जा लेटा हो। उसके सम्मुख अविद्य सौन्दर्य खड़ा था—एक रूपसी-रमणी मूर्त्ति ने द्वार खोलते ही कहा—

"मेझे सेठ धनपत रॉय ने भेजा···।"

चुन्नीलाल सकते में आ गया, फिर भी वह जादुई मूर्त्ति को इंकार न कर सका—डगमगाते कदमों से अन्दर की तरफ मुड़ते हुये बोला—

"आइये, आइये·········अन्दर पधारिये ·····।"

शराब की बदबू से परेशान होकर सुन्दरी ने अपनी नाक पर हाथ रख लिया, फिर भी उसे अन्दर तो जाना ही था। सोफे पर बैठते ही उसने प्रश्न किया, हाँ तो बतलाइये, अखबार के लिये मुझे कौन सा स्केच मॉडल तैयार करना है "जल्दी कीजिये फ़िर मुझे जाना है।"

चुन्नी लाल उस एकान्त में अपने सम्मुख असीम सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति [illegible] को देखकर भावुकता के रंगीन
हो उठे थे, अचानक जवानी का कोई शेर याद आ गया,

जिसे [illegible] से उन्होंने कह कर ही छोड़ा ——

"अभी आये अभी बैठे अभी दामन सम्भाला है ।
तुम्हारी जाऊँ जाऊँ ने मेरा तो दम निकाला है ।" शीरी विवशता में मुस्कराई तो जरूर पर उसका तन बदन छल उठा, जिससे मुख अंगारे की भाँति चमक उठा, किन्तु उससे सौन्दर्य द्विगुणित हो उठने का कारण चुन्नीलाल के मन का नवनीत पिघलने लगा । नशे की हालत में शीरी की मुस्कराहट के गलत अर्थ लगा बैठने के कारण वह आतुर हो गया । इसके बाद तो वह हर भिड़क को वही समझता रहा जो हर पुरुष समझता है कि स्त्री की इंकार-इंकार नहीं बाहरी दिखावा होती है । उन्होंने साड़ी का पल्लू पकड़ कर खींच लिया । शीरी भय से काँप उठी किन्तु दूसरे ही क्षण भूखी शेरनी की तरह तड़प उठी और पास का फूलदान उठाकर चुन्नीलाल के सिर पर दे मारा । चुन्नीलाल चीख मार कर गिर पड़े, ढेर सारा खून वह निकला और कुछ देर छटपटा कर ठण्डे पड़ गये ।

तभी न जाने कहाँ से एकाएक सेठ का ड्राइवर गंगा चरण निकला और शीरी को कार में डाल सेठ के सम्मुख ले पहुँचा । शीरी अत्यन्त भोली हरिणी कि समान भय भीत थी उस पवित्र-मन को समझ न पड़ रहा था कि क्या करे·········।

यह सेठ का गुप्त कक्ष था सेठ ने एक नजर उसे देखा और ड्राइवर के हाथ पर सौ रुपये का नोट रख दिया, वह तुरन्त सिर झुकाकर बाहर निकल गया और चलते समय द्वार बन्द कर गया । उस विशाल भवन में यदि कोई चीखना चाहे तो गूँज के अतिरिक्त कुछ भी सुनाई न पड़ सकता था—सेठ ने रेडियो की आवाज खोल दी

जो कक्ष में गूंजने लगी।

द्वार बन्द होते ही सेठ ने शैतानी अदा से शीरी को बैठने का संकेत किया और खुद सुनहरी शराब की बोतल ढक्' से खोल उसे वेशकमती गिलास में उडेलते हुये उसी शैतानी मुस्कराहट से पूछा—

"शौक फरमायेंगी शीरी साहिबा!" शीरी का बदन कसाई के हाथ में कुल्हाड़ा देख खूंटे बन्धी गजरी गाय की भांति, थरथरा उठा। सेठ ने उस के भय को भांपते हुये पूरी तसल्ली से कहा---

घबराइये नहीं, मुझे जार जबरदस्ती में कतन यकीन नहीं, औरत की ख्वाहिश के खिलाफ बहशी ही कुछ कर सकते हैं, कम से कम आप हमें उन निगाहों से न देखें............।"

भयभीत अवस्था में झिझकती सहमती शीरी ने धैर्य पूर्वक स्वर को संयत करने की चेष्टा मे दो चार शब्द ही कहे---

"मुझे ..... यहाँ..... .... किस लिये .... .. रोका है? "तुम्हारी जान बचाने के लिये।" शरारत भरी मुस्कराहट मुंह पर लाकर सेठ ने कहा—

"तुम जानती हो तुमने चुन्नीलाल चौरसिया का खून किया है कत्ल के इल्जाम में पुलिस तुम्ही को तलाश कर रही होगी, बाहर निकलते ही वह तुम्हें दबोच लेगी, और मासूम खूबसूरती हवालात के सख्त सींखचों में बन्द हो जाये, यह हम जैसा रंगीन, कल्चर्ड और सुन्दरता का पारखी कैसे वर्दाश्त कर सकता है।" कहते कहते सेठ ने पहला गिलास खाली करते--करते दूसरे दौर के लिये गिलास भरना शुरू किया और एक क्षण रुककर बात को

पूरी करते हुये कहा—"दूसरे, हम नहीं चाहते तुम्हारे पकड़े जाने से हमारे स्कूल की' बदनामी हो, जिससे दूसरी लड़कियों पर गलत ······· असर पड़ेगा।

डरी हुई शीरी दिवार में घुस जाने का असफल प्रयत्न कर रही थी। 'यहाँ तुम चिल्लाओं तो भी कुछ असर नहीं होगा, वैसे तुम चाहो तो हम दरवाजा खुलवा देते हैं, लेकिन सोच लो! सड़क पर तुम्हारा स्वागत करने के लिये हथकड़ी की माला लिये कौन खड़े होंगे? अगर कुछ खानदानी इज्जत का ख़्याल है, तो वह रखा है उधर टेलीफोन, रीसिवर उठाओ और खुद ही खबर करके यहाँ बुलवा लो ताकि वे पर्दे वाली पुलिस वैगन में बैठ कर बड़े घर की ससुराल घुमा लाये।"

सेठ पर नशा छाने लगा था, शीरी की जादुई सुन्दरता के कारण आतुर उनका हृदय अधिकार से बाहर होता जा रहा था उन्होंने डगमगाते कदमों से शीरी के पास पहुंचते हुये, शीरी का हाथ पकड़ छाती पर खींचने की चेष्टा करते हुये कहा—

"या फिर सब कुछ भूल कर हमारे आग़ोश आ दुनिया की चिन्ता से नजात पा जाओ।"

शीरी होश खो चुकी थी। लगा, उसका मन इतना घबरा गया था कि मस्तिष्क में सोचने समझने की शक्ति न रही, लगा उस पर पागलपन का दौरा पड़ा हो, उसने झटके से बायाँ हाथ खींचकर सड़ाक से सेठ जी के गाल पर इतने जोर का चांटा मारा रेड़ियों के सँगीत को चीर कर कमरे में फड़ाक की आवाज गूंज उठी। पाँचों उँगलियों के निशान गाल पर जमा कर उसका हाथ भी झन-झना उठा था, हाथ की झनझनाहट से उसे कुछ होश आया,

उधर सेठ जी का नशा भी काफूर हो गया, वह कदर्थ उसके सतीत्व की चोट खाकर अपने ही घर में हक्का बक्का खड़ा रह गया, क्योंकि उसने उसी समय पास ही रखे हुये फलदान के फलों से बिजली की तरह झपट कर उठाया हुआ चाकू शीरी की मुट्ठी म चमकता हुआ देख लिया था और वह स्वय भी खुले बालों में अ'गारों से दहकती हुई लाल-लाल आँखे किए हुये भवानी के समान दिखलाई पड़ी थी : सेठ घबराकर कई कदम पीछे हट गया और भय से चीख उठा "ड्राइवर——गंगा——दरवाजा खोलो ।"

दरवाजा खुला और दैत्याकार काला कलूटा गंगा, जंगली हिरणी पर चीते की तरह, छलांग लगा कर शीरी की कमर पर कूद पड़ा तथा कलाई मरोड़ दी, चाकू छिटकर दूर जा पड़ा, शीरी असहाय होकर फफक पड़ी, उसका सारा क्रोध आँसुओं की धारा बनकर बहने लगा ।

अपमानित सेठ ने अत्यन्त क्रोध के साथ, मुंह पर थूकते हुये कहा, "लेजा इस कुतिया को और कर ले अपनी हवस पूरी, ताकि इसे पता चल जाये, कि प्यार और नफरत में कितना फर्क है ।"

तेंदुए की तरह भेड़ को मुंह में दबाये हुए के समान गंगा देव की भांति अट्टहास करता हुआ उसे खींच ले चला ।

× × × ×

चुन्नीलाल चौरसिया के हत्या काण्ड की ख़बर शहर के एक कोने से दूसरे कोने तक आग की तरह फैल गई । सब निश्चित रूप से अनुमान लगा रहे थे कि यह सब भास्कर के विषय में अखबार के द्वारा कलई खोलने का नतीजा

है । जगह-जगह [illegible] हो रही थी, लोगों में उत्तेजना बढ़ती जा रही थी । कोई कहता, "जो कुछ भी हो रहा है, विधर्मी जिलाधीश की शह पर हो रहा है । हुकूमत ने सर चढ़ा लिया है इन अल्प संख्यकों को, नेता लोग वोटों के लालच में सब कुछ सह रहे हैं, दो हिन्दुओं पर कातिलाना हमले हो गये और हम हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं, कोई सांस भी नहीं निकाल रहा, जैसे आज भी किसी अत्याचारी यवन का शासन हो । क्या हमारा खून सो गया है ? हम यह जुल्म कब तक बर्दाश्त करेंगे ?"

विदेशी एजेंटों ने अपनी कार्यवाही तेज करदी थी, वे दिल खोलकर लोगों की भावनाओं को भड़का रहे थे । गुण्डे मौके की तलाश में थे । किसी ने जाते हुये कांसटेबिल पर फतवा कसा—

"गुण्डों को ये ही पनपा रहे हैं ।" कांसटेबिल ने एक दम पीछे हटकर रोजाना की तरह भद्दी गाली का प्रयोग करते हुये डंडा घुमाया और डंडा घुमाते ही दूसरा डंडा पकड़ कर जोर से चिल्लाया "मार लिया रे——मारलिया जालिमों ने••• ।" देखते देखते सैंकड़ों आदमी इकठ्ठा हो गये, किसी नेता ने आवाज दी मारा जुल्मियों को और रोज पुलिस की गालियां सुन सुनकर, डंडे की चोट खाने वाले, ठेली वालों सब्जी वालों ने अपनी पुरानी कसर निकालना शुरू कर दिया ।

पुलिस वाले की शामत आ गई थी, कई हाथ तड़ातड़ पड़ रहे थे । हर कोई हाथ साफ करने के फिराक में था । कांसटेबिल बद हवासी में लगातार सीटी बजाता जा रहा था । कई मिनट बाद दस पांच डंडाधारी पुलिसमैंन आये और आते ही जनता को तितर बितर करने लिए डंडे के

चमत्कार दिखलाना शुरू कर दिया। कई को चोट लगाने से पब्लिक बिगड़ उठी, खून खोल उठा। अपने साथी की बुरी दशा देख पुलिस वाले भी तैश खा गये थे, उन्होंने नृशंसता से लोगों पर लठ बजाना शुरू किया। लोग भी लाठी, बांही, बांस कंकड़, पत्थर जो हाथ लगा लेकर शुरू हो गये। खबर फैलती गई, जत्थे बंधते चले गए, गुण्डों ने अपने--अपने इलाके में लूटपाट शुरू कर दी। लड़ाई पुलिस से न रहकर हिन्दु और मुसलमान के नाम से छिड़ गई। तमंचे निकलने लगे, पटाखे पटकने लगे, छुरियों और भालों का प्रयोग होने लगा। हथियार बन्द, सिपाहियों के झुण्ड दिखाई पड़ने लगे। तब तक भीड़ का कोई जत्था भास्कर की कोठी में आग लगा चुका था और एक जत्था जिलाधीश की कोठी पर धावा बोलने चला गया था, बड़ी मुश्किल से पुलिस रोक पा रही थी।

तनु को सेठ के आदमी बांधकर उठा ले गये थे। नई माँ इस हाथा पाई में भास्कर के हॉस्पिटल की ओर भाग निकलीं थी।

पुलिस की गोलियों की बौछार से डरी हुई, भगदड़ सेना के समान, पब्लिक के पैरों नीचे, बुरी तरह रौंदी जाकर पड़ी कराह रही थी। भानुदेव उसको रोकने के लिए, उसके अनुकरण पर पीछे दौड़ते हुये, उसी प्रकार लोगों की लातों घूसों का शिकार होकर, भागती हुई पब्लिक के नीचे आ चुका था, जिसके मुंह, हाथ पैर, नाक, पेट आदि को कीलों "जड़े-बूटों" वाले व्यक्तियों के अन्धाधुन्ध दौड़ते कदम, लगातार चोटें दे देकर, दम तोड़ने पर विवश कर रहे थे और वह नई माँ के शरीर पर गिरकर अन्तिम साँसें गिन रहा था।

गई माँ शोक से रुक जाने के कारण दम घुटघुटकर साँसे तोड़ रही थी। भाग्य की विडम्बना दो प्रेमियों के अन्तिम मिलन का भरे चौराहे पर कितना भयंकर दृश्य था—लगा जैसे समाज अपनी मर्यादा तोड़ने वाले अपराधियों को अनजाने ही कठोर दण्ड दे देकर मार रहा हो, और नियति उसकी क्रूर पीड़ा देखकर भयँकर अट्टहास कर उठी हो।

रुड़की कैन्टोनमेन्ट से मिलिट्री बुलवा ली गई थी। शहर में कर्फ्यू लगा दिया गया था। विदेशी एजेन्ट अपने ठिकानों पर शराब के दौरों में भारतीय जनता की मूर्खता पर खिलखिला रहे थे।

× × × ×

व्याध के हाथ में पड़ कुररी पक्षी के समान, बिलखती हुई शीरी हवशी ड्राइवर गंगा चरण के पैरों से लिपट कर रो रोकर दया की भीख माँगती हुई प्रार्थना कर रही थी, "मुझे छोड़ दें भैया ... .मैं तेरी वहिन हूं ......
.. तेरी काली गऊ हूँ, तुझे अपने राम की कसम, तुझे ... ... अपने कृष्ण की कसम............क्या कोई तेरी वहिन नहीं है... ... ...क्या कोई तेरी वेटी नहीं है ..।"

वहिन का नाम सुनते ही गंगा चरण फिर अठ्ठहास कर उठा, जैसे उसे कोई भयंकर दृश्य याद आ गया हो और वह मन ही मन उफन कर कह रहा हो —

"मेरी वहिन पर किसने दया की है ?"

शीरी के रोने बिलखने का उस पर कोई प्रभाव नहीं

था । वह वहशी-सा होगया था । उसने शीरी के हाथ को झटका देकर कई चांटे उसके मुँह पर मारे, शीरी बिलबिला उठी । माथा भिन्ना गया । वह बेहोश-सी होकर धरती पर लुढ़क गई । वह वहशी हालत में उसके सीने पर झुका ही था कि कोई चीज देखकर, जैसे फन उठाये साँप दीख पड़ा हो, आश्चर्य मिश्रित चीख मार कर पीछे हट गया । वह मन ही मन कहने लगा, "नहीं ऐसा नहीं हो सकता········ ········ कौन हो तुम ·······?" वह दौड़ कर पानी का लोटा भर लाया और शीरी के मुँह पर छींटे मार उसे होश में ले आया । किसी समय दु:ख के अत्यधिक वेग के कारण, हृदय पर आघात पहुँचने से मस्तिष्क की गति रुक जाने के कारण जो जुबान सदा के लिए बन्द सी हो गई थी आज हषारेक से कुछ शब्द फूट निकले—उसने शीरी के गले में पड़े हुये लाकेट में पड़ी हुई बहिन की तस्वीर को देखकर चिल्ला कर पूछा—

"तुझे यह लाकेट कहाँ मिला·········तेरा इससे क्या सम्बन्ध है ?"

शीरी ने कहा, "यह मेरी माँ का लोकिट है, इसमें मेरी माँ की तसस्वीर है ।"

क्रूर गंगा पागलों की भाँति बिलख उठा, पत्थर पिघल कर मोम हो गया ।"

"मेरी भाणजी, मेरी बेटी········ ।"

कहकर चिल्ला पड़ा । उसके नेत्रों से गंगा जमना बह निकली । सिनेमा के चित्रों की भाँति शीघ्रता से एक एक दृश्य उसकी स्मृति पटल पर दौड़ने लगा, सन बयालिस में वह किस तरह नारे लगा रहा था, कैसे जनता जोश में उमड़ी उसके पीछे चल रही थी, पंजाब की प्यारी युव

तियाँ उस पर पुष्प वर्षा कर रही थीं, लोगों ने मालाओं से उसका गला भर दिया था, पुलिस के आने पर उसकी साहस भरी बातें सुनकर लोगों ने जय जयकार किया और वन्दे मातरम् के नारों से आकाश गुंजा दिया था। पुलिस उसे पकड़ कर ले गई और चलते समय उसकी बहिन ने हाथ का अँगूठा चीर कर अपने रक्त से उसके मस्तक पर तिलक किया था और साड़ी का पल्लू फाड़कर उसके हाथ पर राखी बाँध, हँसते हुये मुँह पर, रोती हुई आँखों से देखते–देखते विदा किया था। उसने शीरी पर पुनः दृष्टि डाली, 'आँख, नाक, चेहरा-मोहरा एक-एक अग की बनावट सब वही।" उसने छूकर देखना चाहा, अपने हाथों की झुर्रियाँ देखकर सहम उठा जैसे उसके मन ने टोका हो।

"पगले? बहिन भी तो तेरी तरह बूढ़ी हो चली होगी?" और फिर वे करुण चित्र उसके सामने आने लगे।

देश बटवारे के साथ आजाद हुआ, वह जेल से छूटा, भयंकर नर संहार के बीच असँख्य बलात्कारों की कहानियां बनीं। उसकी बहिन नहीं मिली। भयङ्कर दुःख के आघात ने उसकी जबान छीन ली। सारे स्वप्न टूट गये। आजादी में बर्बादी की कहानी ढोता हुआ मन में पीड़ा की आग सुलगाये वह हिन्दुस्तान की तरफ दौड़ आया और तब से अब तक उसकी विवशतता ने सेठ की सेवा के लिये न जाने कितने जघन्य अपराधों की कहानी गढ़ी और आज अपनी ही भाणजी को............।"

उसका मन ग्लानि से भर गया, उसने चाहा कि अपने सीने में कटार भोंक कर प्रायश्चित करें,

पर पातकी प्राण शीरी से चिपटे रहे।

रिश्ते भी मानव जीवन की कहानी को कैसे कैसे मोड़ देते हैं उसने पूछा ....

"कहाँ है तेरी माँ ......?"

शीरी ने कहा—' मर गई.........।" दोनों हिचकियाँ लेकर सिसक उठे।

सड़क पर भयंकर हंगामे की आवाजें आ रही थीं, लगता था जैसे कोठी में भारी भीड़ भर गई है। सेठ की पार्टी के आदामी, सेठ की रक्षा के लिये शस्त्र निकाल कर तैयार हो गये थे। सेठ ने गंगा चरण को आवाज दी गंगा चरण ने शीरी को क्रूर सेठ से वचाकर तुरन्त दूसरे स्थान पर पहुंचाने का इरादा किया। उसने उसे बांहों में पकड़ उठा लिया और पूछा—

"कहाँ रहती है तू ?" शीरी के उत्तर देने पर गंगा-चरण उसे दीवार फाँद पीछे को ओर से जिलाधीश की कोठी की ओर ले दोड़ा। कोठी से पाँच सात गज के फासले पर लोगों की भीड़ ने उसे देखा उन्होंने समझा कि यह शीरी को उठाकर भाग रहा है। इससे पहले कि शीरी अपने मामा का परिचय दे, लोगों ने हिन्दु को मुसलमान लड़की उठाने के आरोप में लाठियों से पीट डाला, वह अन्तिम साँस तक वहादुरी से लड़ा, तव तक शीरी दौड़ कर जिलाधीश मामा को बुला लाई। पर लोगों ने उसे अधमरा करके जमीन पर डाल दिया। शीरी रो रोकर "मामा मामा" कह कर चिल्ला पड़ी। लोग पुलिस को देख भाग चुके थे। गंगा चरण ने दम तोड़ते हुये केवल इतना कहा—

"मेरी बहिन......मेरी बहन, मैं तेरी बेटी को सुरक्षित

"……ले आया ……। … .. ले… .. सम्भाल… …तेरे खून के तिलक का बदला … ..चुका……दिया ऽ ऽ। ले बांध … …राखी……।" जोर से एक चीख मारी और हिचकी ली, बहिन कहते कहते ही एक दम खून की उल्टी के साथ उसका दम निकल गया। जैसे जन्म भर के सारे पाप बहन के पावन नाम का उच्चारण करते ही बाहर बह निकले हों। प्रबुद्ध आत्मा शुद्ध होकर बहिन से मिलने किसी अन्य लोक में उड़ चली।

जिलाधीश सलीम साहब ने अपना कैप उतार कर उस अनजान क्रान्तिकारी को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की जिसकी बहिन जिलाधीश जैसे धर्म भाई का आश्रय पाकर भी क्रान्तिकारी भाई को खोज-खोजकर अपनी नन्हीं शीरी को स्मृति के रूप में भाई और बहिन की प्यार भरी निशानी बनाकर भाई की खोज में अनजाने लोक में भटकने को निकल गई थी।

× × × ×

नगर में कर्फ्यू लगा हुआ था। शीरी से सारी दास्तान सुनकर जिलाधीश ने धनपत राँव के मकान को घेरने की योजना बनाई और मिलिट्री कमांडेंट गोपाल को टेलीफोन कर तुरन्त आने को कहा, टेलीफोन रखते ही किसी ने सूचना दी तनु अपने घर से उठा ली गई है। तनवीर यह सुनते ही पागल हो उठा, वह दौड़कर बाहर निकलने ही वाला था—कि भवन में प्रवेश करते हुये गोपाल की कड़क सुनकर ठहर गया, "ठहरो, क्या मरने का इरादा है साहब

जादे ! बाहर कर्फ्यू लगा है निकलते ही गोली से उड़ा दिये जाओगे सारी बहादुरी हवा हो जायेगी और प्रेम का नशा हिरण हो जायेगा"।

तुरन्त कई जीपों की व्यवस्था कर जिलाधीश सलीम मोहम्मद तथा मिलिट्री कमाडेंर गोपाल शर्मा का काफिला धनपतराय की कोठी की ओर बढ़ चला। धनपत राय को हिरासत में ले लिया गया, पर तनु का कोई सुराग न मिला। तनवीर की सलाह पर सैयद मीर मुर्त्तजा के मकान पर धावा बोल दिया गया तनु की दर्द भरी चीख सुनते ही तनवीर खिड़की का शीशा तोड़ते हुये अन्दर छलांग लगा गया और तनु को छुड़ाकर बाहों में भर लिया तब तक मुर्त्तजा और साथियों के हाथों में संगीन की नोक पर प्रेम निमन्त्रण की निशानियाँ डाल दी गई थी।

तनु को छुड़ाकर तनवीर गोपाल और जिलाधीश 'शान्ता कुंज' छोड़ने आये। अपने बचपन के मित्र गोपाल को देख मैं चौंक पड़ा, मैं उसे प्यार से गोद में भरकर नाचने के लिये आगे बढ़ा ही था कि सिपाही ने मिलिट्री की कड़कती आवाज में संगीन तानते हुये कहा —"हाल्ट"

गोपाल ठठाकर हंस पड़ा—हाथ के इशारे से मना करते हुये, अपना कैंप उतार छाती लगा बाँहों में भर ऊपर उठा लिया। शान्ता मुँह से तो कुछ न बोल पाई पर नैनों के जल से अनकही कहानी दोहराने लगी। आज पहली बार फिर शान्ता के संयम का बांध टूटकर इस तरह चित्त की व्यग्रता प्रदर्शित कर रहा था कि मुझे कालिदास के अभिज्ञान शाकुतलम् वर्णित कण्व का स्मरण हो आया। कैसा बुरा रोग है यह प्रेम साधकों और तपस्वियों को भी नहीं

छोड़ता गोपाल ने शान्ता की आंखों में आंसू देखे और

सारा मिलिट्री अनुशासन भूलकर बहिन को बाँहों में भर छाती से लगा आँसु से नहलाना शुरु कर दिया जिलाधीश तनवीर तनु और सब सिपाही आश्चर्य अचकित होकर देख रहे थे तनु भाई बहिन का सम्बन्ध ताड़कर, "मामा मामा कहते गोपाल से लिपट गई और दूसरे शरीर का स्पर्श पाते ही गोपाल पुनः सचेत हो मिलिट्री अनुशासन में आ गया उसने हंसते हुये मुझसे कहा—

लीजिये आपकी बेटी तनु............।

× × × ×

धीरे धीरे शान्ति हो जाने पर कर्फ्यू हटा लिया गया गोपाल के लौटने का दिन आया, जिलाधीश के बँगले पर पार्टी थी, सब एकत्रित हुये। साम्प्रदायिक संघर्षों के कारण लोगों को मूर्ख बनते देख एक चर्चा चल पड़ी। उसी समय तनवीर और तनु के प्रणय प्रसङ्ग का किस्सा उठ जाने पर—जिलाधीश महोदय ने जो रहस्य खोला उसे सुनकर हम सब दंग रह गये।

तनवीर का वास्तविक परिचय देते हुये उन्होंने उसके गले का वह हार दिखलाया जिसमें शान्ता और मेरा, विवाह के समय का, एक छोटा सा चित्र जड़ा हुआ था। इसे उन्होंने संभाल कर रखा था। साध्वी शान्ता इसे देख और सुन कर एकाएक पुनः गृहस्थिन हो उठी। उसने मूर्छा सी अनुभव करते हुये वक्ष पर इस तरह हाथ रखे "बेटा बेटा......"। कह कर पुकारा, जैसे उससे दुग्ध धारा फूट पड़ी हो। गिरने से पहले ही बेटे ने माँ को सहारा देकर सम्भाल लिया।

तनु और तनवीर के प्रणय प्रसङ्ग में बाधा

पड़ते देख, मुझे भी तनु के बचपन की बात याद आगई। मैंने तुरन्त नूरी का दिया हुआ हार, जो इस समय भी तनु के गले में पड़ा था, दिखाकर वास्तविक रहस्य खोल दिया जिसे सुनते ही जिलाधीश महोदय ने तनु को "बेटी ......बेटी......" कह कर गोद में उठा लिया अचम्भित तनु सकते में आ गई थी उसकी गति त्रिशंकु सी होगई वह कभी मुझे कभी शान्ता को और कभी जिलाधीश सलीम साहब को देखती ही रह गई एकाएक वह शान्ता से लिपट गई, "आनन्दमयी मैं तुम्हें न छोड़ सकूंगी, मैं कहीं और न जाऊंगी, मुझे अपने चरणों से अलग मत करना ....तुम्हें तुम्हारा बेटा मिल गया... .....इस खुशी में मुझे दान की भीख दे दो... ... ...माँ मुझे अपने से अलग न करो। उसने जिलाधीश से कहा "डैडी आपके पास तो एक बेटी है शीरी.........एक माँ के पास भी रहने दो.........मेरे अच्छे......।"........जिलाधीश प्रेम विभोर हो उठे।

मैंने कहा ...... "नहीं बेटी अधीर न हो तू हमसे अलग कैसे हो सकेगी ... ... अब तो तू घर की मालिकन बनकर रहेगी... ...मेरे बेटे की बहू ....मेरी बेटी।" मैंने तनवीर की ओर देखा...... 'क्यों बेटे......." तनवीर लजा गया और जिलाधीश ठठाकर हँस पड़े किन्तु आंखों का पानी रोक न सके उनके मुख से निकला ...... 'बेटी— ......मैं तेरी ख्वाहिश के खिलाफ थोड़ा ही चलूंगा......।" उन्होंने तनवीर और तनु दोनों को बांह में भरकर छाती से लगा लिया। शीरी की आंखें भी छल छल करने लगी।

जिस बच्चे के पीछे दौड़कर मैं खदान में गिरकर पेड़ से अटक बचा था वह कोई और था और शान्ता के बेटे

की जंगल का जानवर उठा भागा जिसको, उस समय तनु की माँ नूरी की प्रणय लीला में डूबे जिलाधीश महोदय, जो उस समय I. C. S. की परीक्षा के लिए तैयारी भी कर रहे थे और एक दिन शिकार के शौक से जगल में निकले थे, ने मार गिराया था बहुत खोजने पर भी जब हमारी यानि तनवीर के असली माता पिता की खबर न मिली उन्होंने उसे अपने बेटे की तरह पाला। भाग्य का खेल, बरसों साथ रहकर भी अपने पराये की तरह मिलते रहें पर प्यार का सूत्र न टूट सका।

अब आप ही बताइये हमारे सामने एक समस्या है, बताइये इन दोनों के माता पिता कौन हैं ? इनका विवाह कर दें या नहीं ? और उनके बारे भी बताइये जिन्हें हमने जान बूझकर छोड़ दिया है।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ सं०	ऊपर से पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
७	२६	की	के
११	१८	चल दी—अग्नि की चिता	चल दी ठीक, द्वार के ऊपर टंगे चित्र पर मेरी दृष्टि पड़ी-अग्नि की चिता
१२	६	जब	×
१२	२१	कौत	कौन
१२	अन्तिम	ज्ञान	×
१३	४	मुक्त	युक्त
१३	११	विर्निमेष	निर्निमेष
१४	१	इसके	उसके
१४	४	उन्मन्त	उन्मत्त
१४	६	पहाड़ी स्यान—	पहाड़ी स्थान था।
१४	१०	व्रज	वज
१५	१३	रो	से
१५	१८	मुझरो	मुझसे
२०	१०	दम्य	दम्भ
२०	१३	का	या
२१	११	बना लिया	बना लिया था।
२२	१३	लपेटे हुये	लपेटे हुए थे।
२२	१६	हाथों में	+
२३	६	मुखवृत्ति	मुखाकृति
२३	२३	सुजाई	सुझाई
२४	१०	जा रही	जा रही थी।

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
२७	८	ग्रा	जा
२७	१९	सराहने	सराहने
३१	५	मण्डरियाँ	मञ्जरियाँ
३३	४	।	×
३४	४	का	की
३४	१९	दिय	दिया
३९	१३	प्रनत्न	प्रयत्न
४९	१७	कपा	कहा
४०	१४	फुछ	कुछ
४१	४	प्रेमोवेग	प्रेमावेग
४१	११	छिटकर	छिटककर
४२	२	यूँ अ ?	अपनी
४२	४	तूम ?	तूम्बी
४२	७	भा ? वर	भारी स्वर
४३	१३	काक्किल	कविकुल
४३	१५	का	कर
४३	२०	हथेलियों ठोड़ी थमाकर	हथेलियों को ठोड़ी पर थमाकर
४४	७	छाहने	चाहने
४६	२१	एक	रोक
४७	२६	ग्रोर	या
४८	८	वप्त	स्वप्न
४८	१३	की	को
५९	२२	क्षोम	क्षोभ
५०	१५	इतना ही	इतना ही नहीं
५२	९	उसने	उसे न
५३	१३	दहती	दहकती
५३	२६	लिरटती	लिपटती

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
५४	१२	कटिक्षीक्ष	कटिक्षीण
५५	१४	वहृकर	वहृन कर
५५	२१	खाने	पीने खाने
५८	६	छिटकर शरारतों हंसी में फुसफूसाया	छिटककर शरारत भरी हंसी से फुस-फुसाया
५९	१२	ने पास स्पर्श	के पारस स्पर्श
५९	२०	ठिठकर	ठिठककर
५९	२५	पुर्व	पर्व
६०	४	मुगन्धित	सुगन्धित
६०	६	वर्चित	चर्चित
६०	७	स्त्री	स्त्री-पुरुष
६१	१	सिधा	सिद्धा
६१	६	मदभ्राती	मदमाती
६१	८	नेतिभा	प्रतिमा
६१	९	घुमने	घुमड़ने
६१	१०	नेत्र से किसी आ-द्वितीय	नेत्र किसी अद्वितीय
६१	१७	आशांकित	आशंकित
६२	८	खरवर	खंरवार
६२	१५	शासकेत्व	शासकत्व
६३	९	से	के
६३	अन्तिम	सदा	साथ
६४	१८	दे—से मार	दे ''बान से मार
६४	२०	कि कर्त्ताव्यविमूड	कि कर्त्तव्य विमूढ़
६५	२	लिगा	लिया
६५	१०	बचाको'''तुम	बचालो मेरे बच्चे की मां को'''तुम

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
६५	२५	ह्लास	ह्रास
६६	१९	मस्तष्क	मस्तक
६६	२६	कृत्तिमता	कृत्रिमता
६७	७	हृयय	हृदय
६७	११	अनगित	अनगिन
६८	१०	भाड़कर	फाड़कर
६८	२४	वह निकला है	वह निकला हो
६९			
६९	१	उसमैं	उससे
६९	२	संचारण	संचरण
६९	८	स्फुरती	स्फुर्त्ती
६९	१९	थारण	धारण
६९	२४	कंही	वहीं
७०		त्वर्णा प्रतिभा	मदमाती
७०	८	तैयार पड़ा	मैं यार पड़ा हूं
७०	१०	चा	जा
७०	१५	नहीं।	नहीं था।
७१	१६	निर्माण का	अद्वितीय
७४	१०	निराकार बनाया	निराकार से साकार
७६	१८	उठाई	उड़ाई
७६	१३	सागर लेने	सागर हिलोर लेने
७९	१६	आगब	आगत
७९	५	उदत	उद्धात्त
७९	७	पार्श्चल	पश्चिम
८०	१२	उतना ही कठिन है	बहुत कठिन है।
८३	१४	सिकलते	निकलते हैं।
८३	२१	का	को

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
83	4	शक्ति	शक्ति ने
83	8	जन्मने	भरने
83	22	समझाकर	समझकर
85	1	कद	कर
85	5	यंग्य	व्यंग्य
85	22	सेबसे	सबसे
86	7	उद्योघ	उद्घोष
86	25	हृदत	हृदय
89	18	अटकाव	भटकाव
89	20	को	के
89	21	को	के
89	21		भग्न
90	1	मीमासा	मीमांसा
90	10	जैसे	जिन्हे
91	2	सजनाकार	सर्जना कर
95	22	सताम	समान
95	24	फूकना	फूंकना
96	3	मानुदेव	भानुदेव
96	12	हैं	हूं
96	1	गया तो भी	गये, मुझे भी
97	1	एक एक	एकटक
97	5	बन्धन	बन्ध सा
97	18	मेरे	मुझे क्षमा मेरे
97	20	वाली	वाली
98	20	वह	वह
99	5	दिनी	दिनों
100	20	नान्ता	शान्ता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
100	21	काती	जाती
100	23	स्वय	स्वप्न
101	3	रुदेव	गुरुदेव
101	8	सुलझ	झुलस
101	10	काकती	कसकनी
101	11	लाने को	लेने की
101	20	अचम्पित	अचम्भित
101	24	वयूस	बरूस
102	15	तेजते	तेज से
102	17	मानुदेव	भानुदेव
102	21	जया	लगा
102	24	खुला नहीं पया	खुल नहीं पाया हो
103	3	कल्पया	कल्पना
103	7	ऊड़े	खड़े
103	11	सोमनाथ	सोम रस
106	1	असज	असंग
106	24	पाप केवल	पाप का
111	7	जल बाहर से	जल से बाहर
116	7	शौक्षक	शैक्षिक
116	8	आचुम	आश्रम
124	5	निगम्बर	दिगम्बर
124	7	चासती	चाहती
125	11	षक्तिशाली	शक्तिशाली
125	23	मुसे	मुझे
126	23	श्लाम	नीलाम
127	14	पुलकों	पुलकों से
126	26	मैं समझी महा	मैं समझा नहीं
129	18	कौशल को	कौशल के

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३०	६	निकाल	निकल
१३२	१२	वाली	वालों
१३२	१७	विमुड	विभँढ
१३२	२६	विवरण	विवर्ण
१३२	२६	निवार	निपोर
१३४	१३	भवावेश	भावावेश
१३५	१०	ध्यान	भी
१३५	२३	भि	ध्यार
१३८	६	चल	चलो
१३९	८	गल	लग
१३९	१९	भाँ	माँ
१३९	२६	समाचार का	का समाचार
१४१	२१	भानु ग्रहं	भानु के ग्रह
१४१	२४	शोरष	शोख
१४१	२८	साम्रने	सामने
१४५	२८	मानस्य	मानव
१४४	२१	अस्वस्था	अस्वस्थता
१४४	२५	हैं है	रहे
१४५	५	दर्शदन	प्रदर्शन
१४९	२६	पेठ	पेट
१५०	१६	अदौड़	दौड़
१५१	८	पतस्वी	तपस्वी
१५३	३	क्योंकि	क्यों
१५३	५	मेर	मेरा मन
१५३	११	साकेत	शांकित
१५३	१९	मह	ने
१५३	२२	अदालिकएं याल	अट्टालिकाएं
१४३	२३	उठारियों	ठठरियों

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४४	११	हतप्रेम	हतप्रभ
१५४	२१	होगया!	होगया
१५४	२३	वेकर	बैठकर
१५४	२४	भस्कर	भास्कर
१५५	६	अलफल	असफल
१५५	११	गूंज	गूंज उठ
१५५	१६	उन्होंने अपना प्रयत्न	उन्हें अपना प्रबन्ध
१५६	१५	फूफा	मामा
१५६	२३	पर	और
१५६	७	उले	उसे
१५६	१३	आयका	आपका
१६३	१६	जायेगा	जायागा
१६३	२१	प्राणी	प्राणों
१६४	२१	प्लेट	नेम
१६५	२७	घूंट	घूंट से भरा
१६६	६	दलाक	दस्तक
१६६	१५	मेझे	मुझे
१६६	२०	बबू	बदबू
१६७	४	छल	जल
१६८	४	वेशकमती	बेशकीमती
१६८	७	गजरी	कजरी